श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः

श्रील श्रीरघुनन्दन गोस्वामी प्रभुपादेन विरचितम्

श्रीगौराङ्ग विरुदावली

हिन्दी अनुवाद सहित

गौडीयसम्प्रदायाचार्य
श्रीहरिदास शास्त्रीणा सम्पादितः

आधुनिक प्रतिलिपि संस्करण

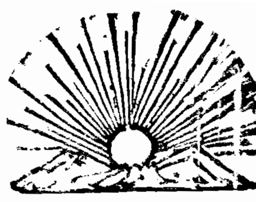
पण्डित श्रीरघुनाथ दास शास्त्रीजी महाराज

व्याकरण,वेदान्तदर्शन,(श्रीधामवृन्दावन)

www.bhaktidarshan.org

Whatsapp +918218476676







श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम्

श्रीरघुनन्दन गोस्वामिविरचिता

श्रीगौराङ्गविरुदावली







श्रीहरिदास शास्त्री





※ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ※

श्रीगौराङ्गविरुदावली

श्रीरघुनन्दन गोस्वामिविरचिता

श्रीवृन्दावनधामवास्तव्येन न्यायवैशेषिकशास्त्रि, नव्यन्यायाचार्य्य,
काव्यव्याकरणसांख्यमीमांसा वेदान्ततर्कतर्कतर्क
वैष्णवदर्शनतीर्थाद्युपाध्यलङ्कृतेन
श्रीहरिदासशास्त्रिणा
सम्पादिता ।

सद्ग्रन्थ प्रकाशन :—
श्रीहरिदास शास्त्री
श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस,
श्रीहरिदास निवास, कालीदह, पो० वृन्दावन ।
जिला-मथुरा (उत्तर प्रदेश)
पिन २८११२१
श्रीगौराङ्गाब्द ४९८

प्रकाशक * मुद्रकः—

श्रीहरिदास शास्त्री
श्रीगदाधरगौरहरि प्रेस,
श्रीहरिदास निवास, कालीदह,
पो० वृन्दावन, जिला—मथुरा,
(उत्तर प्रदेश) पिन—२८११२१

प्रथमसंस्करणम्—एकसहस्रम्

प्रकाशन सहयोग—१८.००

प्रकाशनतिथि
श्रीजगन्नाथदेवकी स्नानयात्रा
१३।६।८४
श्रीगौराङ्गाब्द ४९८

※ श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ※

विज्ञप्तिः

※※※

"श्रीगौराङ्ग विरुदावली" नामक प्रस्तुत ग्रन्थ रचयिता श्री रघुनन्दन गोस्वामी नामक प्रथितयशाः व्यक्ति हैं, आप श्री नित्यानन्द वंश्य एवं श्रीकिशोरी मोहन गोस्वामी महाशय के कनिष्ठ पुत्र थे। सप्तदश शकाब्दा के शेष भाग में वर्द्धमान प्रदेश के अन्तर्गत 'माड़ो' नामक पल्ली में आप का जन्म हुआ था। ४५ वत्सर आयु में आपने राम रसायन नामक करुण रसात्मक एक बृहद् ग्रन्थ की रचना की है। संस्कृत भाषा एवं वङ्ग भाषा में आप के द्वारा रचित विविध ग्रन्थ उपलब्ध हैं। श्रीगौराङ्ग चम्पू, श्रीगौराङ्ग विरुदावली, श्रीरामरसायन, श्रीराधादामोदर काव्य, गीतमाला, देशिक निर्णय, वैष्णव व्रत निर्णय, श्रीगौराङ्ग तत्त्व निर्णय, श्रीमद् भागवतीय संशय शातनी टीका एवं 'छन्दोमञ्जरी व्याख्यान' प्रभृति ग्रन्थ रचना आप के द्वारा हुई हैं॥

गौड़ीय वैष्णव साहित्य में आपका अवदान अतीव महान् एवं चिर स्मरणीय है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर एवं श्रील बलदेव विद्याभूषण महाशय के परवर्त्ती समय में जिन्होंने गौड़ीय वैष्णव साहित्य की सेवा की है, उनके मध्यमें श्रीरघुनन्दनका स्थान ही सर्वोच्च है।

श्रीरूप गोस्वामि प्रणीत श्रीगोविन्द विरुदावली के सहित सर्वांश में समन्वय स्थापन कर ही श्रीगौराङ्ग विरुदावली की रचना हुई है। ग्रन्थकार की लेखनी में उस का प्रकाश हुआ है—

"गोविन्दस्य प्रकाशोऽभूद् यथा श्रीगौरसुन्दरः।
गोविन्द विरुदावल्यास्तथेयं विरुदावली।" १२३

श्रीगौराङ्ग वर्णना भी अति सुन्दर एवं जाज्वल्यमान है—

"सत्य परम सुख शुद्ध समुज्ज्वल नित्य रुचिरतर विश्वग् पुद्गल।
सर्वविबुधवर बुद्धि सुदुर्गम सर्वहृदयगत निर्म्मल विभ्रम॥ इत्यादि।

आपने श्रीगौराङ्ग देव को कभी मन्दर पर्वत के सहित (८) कभी सिंह के सहित (१४ ६१) मेघ के सहित (१८-२०) सरोवर के सहित (२६) हस्तिवर के सहित (५८) एवं चन्द्र के सहित रूपक करके परम रसचमत्कार प्रवाह का प्रवर्त्तन किया है। श्रीगौर सुन्दर की कीर्त्तन प्रभाव वर्णना भी अनुपम है।

"दोर्दण्ड द्वयदण्डचालन भरात् पापाण्डजान् डारयन्।
पाषण्डावलि मुण्ड मण्डलमतीवाखण्डयन्नङ्घ्रिणा।
काण्डे दण्डमपि प्रमण्डयतु में मार्त्तण्ड कोटिच्छवि,
गौर स्ताण्डव पण्डितोऽलिकल सत् पुण्ड्रोमनोमण्डपम्॥ (४८)

इस प्रकार श्रीगौर सुन्दर चरणारविन्द युगल की, लीलालिकल्लोलिनी की, कीर्त्तन वर्षण की, कीर्त्तन गर्जन प्रभाव प्रभृति की वर्णना में स्वीय असाधारण रचना नैपुण्य एवं अलौकिक काव्य प्रतिभा का परिचय प्रदान आपने किया है।

श्रीगौर सुन्दर के श्रीचरणों में आपकी प्रार्थना भी अति मधुर है—

"गौरः सच्चरितामृतामृतनिधि गौरं सदैव स्तवे,
गौरेण प्रथितं रहस्य भजनं गौराय सर्वं ददे।
गौरादस्ति कृपालु रत्र न परो गौरस्य भृत्योऽभवं,
गौरे गौरवमाचरामि भगवन् गौर प्रभो रक्षमाम् ॥११०

(११५) श्लोक में भी उस प्रकार प्रार्थना है—

"गौराङ्गोऽगणितं गतो गुणगणं गीर्वाण गोत्रो गवां
ग्लानिं गाढ़तमां गिलन् गृहरुचि गन्धार गीते गुरुः।
गञ्जन् गोत्रसमं गजं गति रुचा गाम्भीर्य्यतो गोनिधिं
गाङ्गेयं गुरु गौरवेण गदतो गीः पद्धतिं गाहतां॥
श्रीराजिततर हीराञ्चितकर
धीरावृतवर गीरार्दित नर ॥ धीर ! ॥"

'वि पूर्व रुद् रोदने' धातु के उत्तर घ अर्थ 'क' विधान द्वारा निष्पन्न 'विरुद' शब्द से विलक्षण रोदन अर्थ का बोध होता है।

प्राचीन काल में वन्दिगण शत्रु गृह में अवरुद्ध होकर अनिच्छा क्रम से अश्रुपात पूर्वक विजेता का स्तुति गान करते थे, इसका उल्लेख पण्डित जगन्नाथ कृत रस गङ्गाधर में उल्लेख है, 'पठन्ति विरुदावली महित मन्दिरे वन्दिनः'। परवर्त्ती काल में इस शब्द का प्रयोग,—उच्चघोषणा,स्तुति माला प्रभृति अर्थ में हुआ है। 'प्रतापरुद्र यशोभूषण' नामक ग्रन्थ की टीका में उदाहरण एवं कवि प्रौढ़ोक्ति सिद्ध अन्यान्य क्षुद्र प्रबन्ध समूह को कुमार स्वामी ने चाटु प्रबन्ध कहकर विरुद काव्य को स्तुति काव्यान्तर्गत किया है।

विरुद काव्य प्राचीन है, कारण खृष्टीय द्वितीय तृतीय शताब्दी में रचित 'अहिर्बुध्न संहिता की देव प्रशस्ति में 'भोगावली' शब्द का उल्लेख है। 'विरुदावली' शब्द का उल्लेख न होने पर भी वस्तुस्थिति एवं रचना शैली में साजात्य सुस्पष्ट है।

विद्यानाथ कृत 'प्रतापरुद्र यशोभूषण' नामक अलङ्कार निबन्ध के काव्य प्रकरण में जो क्षुद्र प्रबन्ध निर्णय प्रसङ्ग हैं, उस में 'उदाहरण' 'चक्रवाल' 'भोगावली' एवं 'विरुदावली'नामक प्रबन्ध विशेष का तुलनामूलकलक्षण आलोचित हुआ है। प्रतापरुद्रीय ग्रन्थ की कुमार स्वामिकृत टीका की सहायता से उक्त विषय चतुष्टयों के लक्षणादि लिखित हो रहे हैं।

'उदाहरण—वह है--जिस में चञ्चत्पुटादि ताल का प्रयोग होता है। विभक्ति एवं विभक्ति का आभास युक्त वाक्य कदम्ब द्वारा रचित 'कलिका' अथवा 'उत्कलिका' गद्य भेद का प्रयोग है। एवं प्रति वाक्य के आदि में उक्त वाक्य की समान विभक्ति युक्त नायक नामाङ्कित श्लोक माला से गुम्फित पद्य के द्वारा जो गठित है।

जिस में 'जयति' शब्द का प्रयोग सर्वाग्र में होता है, मालिनी प्रभृति वृत्त, एवं अनुप्रास यमकादि शब्दालङ्कार द्वारा जो विचित्र होता है। एवं जिस में सम्बोधन सहित प्राप्त विभक्ति की रचना है—वह ही 'उदाहरण' है।

कुमार स्वामि के मत में प्रबन्धान्त में सर्व विभक्ति युक्त एक श्लोक होना आवश्यक है—इसका उदाहरण—'साहित्य चिन्तामणि ग्रन्थ में उपलब्ध है। काव्यान्त में कवि प्रबन्ध नामाङ्कित पद्य, विशेष की रचना भी करनी होती है। कारण, 'चाटु प्रबन्ध' समूह का साधारण नियम यह है कि उस के अन्त में कवि एवं उनकी कृति नाम युक्त-

अनुष्टुप् अथवा आर्य्यावृत्त युक्त श्लोक रचना होनी चाहिये। कवि कालिदास कृत विक्रमोर्वशीय के (२।१४) श्लोक में 'तुल्यानु राग पिशुनं ललितार्थ बन्धं, पत्रे निवेशितु-मुदाहरणं प्रियायाः'' 'शकुन्तला' के (७।३) श्लोक में ''सञ्चिन्त्य गीतिक्षमम्र्थबन्धं' क्रमशः उदाहरण एवं गीतिबद्ध राजस्तुति का परिचय उपलब्ध है।

'चक्रवाल' वह है जिस में सम्बोधन बहुल प्रबन्ध के आदि में पद्य है, एवं गद्य समूह कलिका रूप में अनुप्रविष्ट हैं, जिस में दो अथवा तीन अक्षर पद—शृङ्खलाकृत होकर दल के आदि एवं अवशेष में विन्यस्त है। इसमें गद्य एवं पद्य उभय दल ही आवृत होते हैं।

जिस प्रबन्ध के आदि एवं अन्त में पद्य है, जो संकृत एवं प्राकृत भाषा निबद्ध है, जिस में आठ अथवा चार वाक्य द्वारा परिच्छेद विभक्त होता है, प्रति परिच्छेद में देव एवं नृपति की परिक्रमादि सूचक विभिन्न वाक्य भङ्गी होती है एवं सर्वत्र 'देव' 'वीरादि शब्द व्यवहृत होते हैं, वह 'भोगावली' नाम से अभिहित है। कुमार स्वामी के मत में भोगावली में प्रायशः ही भोगोपकरण, उद्यान वसन्त एवं नायक के गुणादि की वर्णना ही विहित है।

अहिर्व्युध्न संहिता के (२९।६६) शिशुपाल बध के-(५।६७) 'वैतालिकाः स्फुट पद प्रकृतार्थ मुच्चै र्भोगावलीः कलगिरोऽवसरेषु पेठुः'। राजानक रत्नाकररचित हरविजय में - (४४।५९)

'भोगावलीभिरूपलक्षितनामधेयाः', अलककृत टिप्पनी में (भोगावली वन्दिनां पाठः, राजशेखरकृतविद्धशालभञ्जिका के उपक्रम में—'सुण णरेन्द्र वन्दिणो कप्पुर चण्डसूसपमाद भोआवलिम्' । धनपालकृत—तिलक मञ्जरी में) प्रकृतिकलकण्ठस्य मङ्गल पाठकस्येव पठतः शुकविरङ्गस्य प्रसङ्गागतै र्भोगावलीवृत्तैः पुनः पुन र्जनित विस्मयविस्मयावहैकैकवस्तु—विस्तारिताम्यवहारतर्षै।

सोमदेव सूरि कृत यशस्तिलक में—'भागावलीपोषकेषु' 'सोत्कण्ठमुत्कण्ठस्व भोगावलीपाठेषु' 'जामि र्भोगावली पाठिनः। नैषध में (१०।१०६) ''तदङ्ग भोगावलि गायनीनां'' श्लोक की मल्लिनाथ कृत एवं नारायण कृत टीका द्रष्टव्य।

मङ्ख कविकृत श्रीकण्ठचरित में (६।५५) 'अनङ्ग भोगवलि पाठवन्दी।' श्रीरूप गोस्वामी कृत ललित माधव के (५।२२) में भी 'भोगावली' शब्द का उल्लेख है।

श्रीरूप गोस्वामी व्यतीत खृ० अष्टम से द्वादश शताब्दी पर्य्यन्त काव्य साहित्य में भोगावली शब्द का प्रभूत उल्लेख हैं। इस समय विरुद नामक काव्य प्रचलित था अथवा नहीं इस का निर्णय करना कठिन है।

प्रतापरुद्र यशोभूषण एवं साहित्य चिन्तामणि ग्रन्थ की टीका के विवरण से बोध होता हैं कि खृष्टीय त्रयोदश शतक में विरुदावली का प्रचार था। प्रादेशिक साहित्य मैथिली में १५--१६ शतक एवं उसके परवर्त्ती शतक में विरुदावली का प्रचलन था।

विक्रम एवं कुल परम्परागत स्तुति मालाके अतिरिक्त प्रचुरतर वाक्याडम्बर युक्त होने से पूर्वोक्त 'भोगावली' ही विरुदावली' रूप में परिगणित हो सकती है। विशेष यह है कि—२७ पद्य होने से 'तारावली' १४ पद्य होने पर 'विश्वावली' ६ पद्य होने पर 'रत्नावली' ५ पद्य होने से 'पञ्चाननावली संज्ञा होती है।

अहिर्व्युध्न संहिता, भोगावली प्रसङ्ग में उक्त शिशु पालबधादि ग्रन्थादि खृष्टय

द्वितीय से द्वादश शताब्दी के मध्य में रचित हैं। सुतरां विरुद काव्य जातीय क्षुद्र प्रबन्ध भी अर्वाचीन नहीं है।

भोगावली लक्षण सम्बन्ध में प्रधानतः शब्दद्वय विशेष प्रणिधान योग्य हैं, प्रथमतः संस्कृत एवं प्राकृत भाषा में इसकी रचना हो सकती है। द्वितीयःत—इस जातीय काव्य में देव एवं राजन्य वृन्द के शौर्य्यवीर्य्यादि संसूचित होना अभीप्सित है। अतएव - भोगावली अथवा विरुदावली देव प्रशस्ति रूप में अथवा राज प्रशस्ति रूप में रचित हो सकती है।

पञ्चदश खृष्टीय शतकमें रचित श्रीधरकृत काव्य प्रकाश विवेक के पुष्पिका वाक्य में मिथिलाधिपति शिव सिंह की प्रशस्ति में 'विरुदावली' शब्द का उल्लेख है। "समस्त विरुदावली विराजमान महाराजाधिराज श्रीमत् शिवसिंहदेव संयोज्यमान तीर भुक्तौ"। साहित्य दर्पण कार के मत में गद्य पद्यमयी राजस्तुति ही विरुद काव्य है। किन्तु देव स्तुतिका भी बहुल प्रयोग दृष्ट होता है। इस प्रसङ्गमें श्री बलदेव विद्या भूषण कृत गोविन्द विरुदावली की टीका में उल्लिखित दाक्षिणात्य कविकृत देव विरुदावली की कथा भी स्मरणीय है।

काव्य प्रकाशा प्रणेता मम्मट भट्ट के पूर्व वर्त्ती कवि शङ्कर कृत "हर्षचरित की (१।१८) टीका में 'उत्स ह' काव्य का उल्लेख है। उस में भी विरुदलक्षण का साजात्य उपलब्ध है। 'उत्साहो नृत्ये ताल विशेषः, उदीर्य्यमान—गीत्याधार भूत--पदोपचारात् काव्यमप्युत्साह इति केचित्। यत्र पूर्वश्लोकेनार्थ उपक्षिप्यते, पश्चात् स एव गद्येन वितन्यते, मध्ये वृत्त निबन्धश्च भवति, स परि समाप्त्यर्थं उत्साह उच्यते इत्यन्ये॥" सुतरां 'उत्साह' एवं विरुद काव्य में नामतः ही भेद है, वस्तुतः भेद नहीं है।

गद्य, पद्य एवं वर्णनात्मक प्रायशः प्राकृत एवं संस्कृत भाषानिबद्ध विरुद्ध काव्य होता था। गद्य को 'वृत्तगन्धि' कहना पड़ेगा।

संस्कृत एवं प्राकृत भाषाव्यतीत असद् भाषा का भी उल्लेख विरुद काव्य में है। मैथिल चन्द्रदत्त कृत कृष्णविरुदावली के उपसंहार श्लोक में उपलब्ध है—'यद् भक्त्या जगदीशस्य चरितं श्रुतवाप्यसद् भाषया।" यहाँ असत् भाषा शब्द से तामिलभाषा को ग्रहण करना समाचीन होगा। कारण, सु प्राचीन काल में दिव्य सूरिगण वेणु वा, ताण्डकम् प्रभृति तामिल चतुः सहस्र संख्यक गाथात्मक 'दिव्य प्रबन्ध' रचना किये हैं। द्वादश आल्वारके मध्य में 'शठकोप' ही समधिक प्रसिद्ध है, तत् कृत 'तिरुवायमोड़ि' अथवा सहस्र गीति तामिल भाषा में महासम्पत् स्वरूप है। तात्पर्य्य रत्नावली (२६) के अनुसार शठ कोप-गोपी आनुगत्य से श्रीनीलाशक्ति नाथ के श्री चरणों में आत्म विक्रय किये थे। (सहस्र गीति ५।३।३) श्री नीला शब्द का अर्थ श्रीराधा ही, है। गोपी भाव में श्रीकृष्ण के प्रति शठकोप की वक्रोक्ति रस. गी. १।५।१ में है। श्रीराधालिङ्गित श्रीकृष्ण का स्मरण (६।४।२। प्रभृति एवं मधुर भाव में पारकीय रसाश्रय (तिरुवान मोड़ि ६।२।२, १०।३।६) प्रभृति लक्ष्यीतव्य है। सुतरां कहा जा सकता है कि-मैथिल चन्द्रदत्तने असद् भाषा शब्द से तामिल भाषा में गाथात्मक सुप्रचारित दिव्य प्रबन्धका ही इङ्गित प्रदान किया है, एवं आनुषङ्गिक रूप से दक्षिण देश के सहित विरुद काव्य के माध्यम से देशगत ऐक्य भावना का सङ्केत प्रदान किया है।

खृष्टीय ११४० में रचित हेमचन्द्र कृत काव्यानुशासन के क्षुद्र प्रबन्ध प्रकरण में

'विरुद' शब्द का उल्लेख नहीं है। अपभ्रंशछन्द निर्णय (५।१—४८) प्रसङ्ग में आपने उत्साह, रासक, अवतंसक, कुन्द कोकिल, कुसुम, आमोद अड़िला, छबल, यशोधवल, कीर्त्ति धवल, गुणधवल, भ्रमर, अमर, मङ्गल, फुल्लड़क, झम्वटक प्रभृति का लक्षण है। तत्रत्य ४७ अङ्कधृत लक्षण में भाषागान विषयक उत्साह धवल, वदन धवल, हेलाधवल, दोहक धवल, उत्साहमङ्गल, वदन मङ्गल प्रभृति का भेद प्रदर्शन आपने किया है। (४८) अङ्क में 'देवगानं 'फुल्लड़कम्' कहकर वृत्ति में आपने लिखा है—उत्साहादि जिस छन्द द्वारा देवता का गान होता है वह 'फुल्लड़क" (फुलर) है।

सङ्गीत रत्नाकर में (४।३०२) शाङ्र्गदेव ने कहा है—प्रबन्धगान स्वरूप धवल गान में धवलादि पदान्वित आशीर्वाद सूचक शब्द विन्यास के सहित राग एवं ताल का होना आवश्यक है।

प्रबन्ध गान के त्रिविध विकाश हैं—कीर्त्ति, विजय, एवं विक्रम। चार चरणों में कीर्त्ति धवल, छै पद में विजय धवल, एवं आठ चरण में विक्रम धवल होता है। इस में मात्रा वैचित्र्य भी है। मङ्गल प्रबन्ध के सम्बन्ध में सङ्गीत रत्नाकर में शार्ङ्गदेव ने कहा है—विलम्बित लय अथवा मङ्गलछन्द से कैशिक अथवा वोट्टराग द्वारा मङ्गल प्रबन्ध गीत होता है। टीकाकार सिंहभूपाल ने कहा है—"मङ्गल वाचक पद का उल्लेख मङ्गल प्रबन्ध में अवश्य होना चाहिये।' उक्त प्रमाणों से प्रतिपन्न हुआ कि विरुदकाव्य प्राचीन काल से ही निर्दिष्ट ताल एवं राग से गीत होता था।

विरुदावली के लक्षण में सलक्षण चण्ड वृत्त का अवान्तर भेद एवं नख के विभेद से कथित रण, वीरभद्र, वेष्टन, मातङ्ग खेलित, तुरग, कन्दल, अस्खलित एवं विशिख प्रभृति संग्राम संक्रान्त शब्द विन्यास है, एवं द्विगादि गण वृत्त के अवान्तर कोरक, गुच्छ संफुल्ल कुसुम, गन्ध एवं चण्डवृत्त के वकुल प्रभृति नृपोचित भोगोपकरण विषयक पारिभाषिक लक्षण हुआ है, इस से प्रतीति होती है कि यह काव्य प्रधानतः राजन्य की कीर्त्ति स्तुति में कीर्तित होता।

साहित्य दर्पण के (१०।४८) 'सौजन्याम्बुमरुस्थली' इत्यादि पद्य से राजावली से शूली महादेव की सेवा का अनायास साध्यत्व प्रति पादित होने के कारण देव विषयक विरुद का संवाद उपलब्ध होता है।

काव्य गोष्ठी में विरुद का स्थान—यमकानुप्रासादि के बाहुल्यवशतः चित्र-काव्यान्तर्भूत होता है। कारण, विरुद में शब्द चित्र ही विशेष रूप से रूपायित होता है। आनन्द वर्द्धन ने देवीशतक में चित्र काव्य का 'बन्धकाव्य' में परिणत किया है। त्रिभङ्गीवृत्त कलिका की अनुप्रासरूप वर्णावृत्ति-भङ्ग को लक्ष्य करके इसको 'भङ्ग' काव्य भी कहा जा सकता है।

व्यङ्ग्यार्थ रहित चित्र कविता,--नीरस, कर्कश, एवं रसाभिव्यक्ति के अनुपयोगी होने पर भी एवं केवलमात्र शक्ति ज्ञापन में ही उपयोगिता स्वीकार्य्य होने पर भी भगवद् विषयक होने पर इक्षु पर्वचर्वणके तुल्य कथञ्चित् सरस होने की सम्भावना है, अलङ्कार कौस्तुभ कार के (७।२१४) मत भी यह ही है—(चित्रं नीरसमेवाहु र्भगवद् विषयं यदि। तदा किञ्चिच्च रसवद् यथेक्षोः पर्वचर्वणम्।"

श्रीचैतन्य युग में एवं तत् परवर्त्ती काल में '५' विरुद काव्य उपलब्ध हैं, श्रीमन् महाप्रभु के समग्र जीवन ही नाम सङ्कीर्त्तनमय विपुल इतिहास है। नाम, रूप, गुण,

लीला, समसूत्र से ग्रथित होने पर भी एवं सन्दर्भादि ग्रन्थ में निरपेक्ष नामसङ्कीर्त्तन की वार्त्ता बहुशः उट्टङ्कित होने पर भी लीलामाला गुम्फित नामावलि ही स्तोत्र काव्य की विषयीभूत वस्तु है। 'हरे कृष्ण' प्रभृति महामन्त्रात्मक नामावलि जिस प्रकार सम्बोधनान्त हैं, उस प्रकार अनेक स्तोत्र काव्य भी सम्बोधनान्त दृष्ट होते हैं। विरुद काव्य भी प्रयशः सम्बोधनान्त है, अतः स्वतः अनुमित होता है कि—गौड़ीय वैष्णववृन्द नूतन रीति से नाम लीला प्रचार निबन्धन एतादृश काव्य का समादर किये हैं।

नायक चूड़ामणि व्रजनव युवराज एवं उनके अभिन्न प्रकाश श्रीनवद्वीप चन्द्र ही उनके विरद काव्य के विषय वस्तु हैं। स्वयं विरुद ग्रन्थकार श्रीरूपगोस्वामि चरण भी श्रीगोविन्द विरुदावली के प्रारम्भ में कहे हैं।

"कर्त्तव्या तस्य का ते स्तुतिरिह कृतिभिः प्रोज्झ्य लीलायितानि ?" तात्पर्य्य यह है कि लीला विरहित स्तुति, सुकृति जनगण समारणीय नहीं है।

अधिकारी एवं फल वर्णन प्रसङ्ग में सामान्य विरुदावली के उपसंहार में श्रीरूप गोस्वामिचरण कहे हैं—व्याकरण शास्त्रादि में व्युत्पन्न, सुस्थिर मति, ग्लानि शून्य, सुकण्ठ एवं श्रीकृष्ण भक्त हो विरुदकाव्यानुशीलन का अधिकारी है।

फल श्रुति में वर्णित है—यथोक्त लक्षणान्वित रम्य विरुदावली के द्वारा स्तुत होने से वासुदेव सन्तुष्ट होकर प्रचुरतर कल्याण विधान करते हैं।

पक्षान्तर में कथित है—सल्लक्षण रहित तद् द्वारा स्वत रचना करने पर एवं उस का पाठ करने पर श्रीहरि सर्वथा उसको अङ्गीकार नहीं करते हैं।

अलङ्कार कौस्तुभ का प्रथम किरण के उप संहार में उक्त है, 'यशः, सम्पत्ति, अशुभशान्ति, परम निर्वृत्ति प्रभृति फल काव्य निर्म्माण के हैं, काव्य प्रकाश प्रभृति में उक्त फलका उल्लेख भी हुआ है, किन्तु वह आनुषङ्गिक फल व्यतीत वास्तविक फल नहीं है। किन्तु काव्य निर्म्माण वसर में श्रीकृष्ण के केलि कलाप में चित्ताभिनिवेश वशतः जो सान्द्रानन्दलय होता है, वह ही कविका एवं आस्वादक का परम लाभ है।

ध्वन्यालोक कार की उक्ति यह है—

'याव्यापारवती रसान् रसयितुं काचित् कवीनां नवा,
दृष्टिर्या परि निष्ठितार्थ विषयोन्मेषा च वैपश्चिती।
ते द्वे अप्यवलम्व्य विश्वमखिलं निर्वर्णयन्तोवयं,
श्रान्ता नैव च लब्धमब्धिशयन ! त्वद् भक्ति तुल्यं सुखम् ॥

पहले कहा गया है—कि खृष्ट द्वितीय तृतीय शताब्दी से प्रारम्भ कर श्रीचैतन्य युग षोड़श शताब्दि के शेष पर्य्यन्त विरुद काव्य उपलब्ध होता है। नामोल्लेख प्राप्त होता है, खृष्ट त्रयोदशशताब्दि से। इस काव्य की विलुप्ति क्यों हुई है ? उत्तर में कहा जा सकता है कि—अन्यत्र कवि निरङ्कुश होने पर भी विरुद काव्य में कवि का स्वातन्त्र्य नहीं रहता है। विरुद काव्य रचना में प्रत्यक्षर ही लक्षणानुसार नियमित होना आवश्यक है। सुतरां अतिमात्रा में कारु कार्य्य, अर्थात् अप्रतीतता, दुरन्वय, कष्ट कल्पना प्रभृति में विशेष निर्भर इस में करना पड़ता है, अतः विरुद काव्य का समधिक प्रचार एवं प्रसार नहीं हुआ।

गोविन्द विरुदावली टीका के प्रारम्भ में श्रीबलदेव विद्याभूषण पादने विरुद

काव्य को 'शिल्प क्रिया' नाम से अभिहित किया है। द्वितीयतः तत् सम कालीन लीला-स्तव, स्तवमाला, स्तवावली प्रभृति स्तोत्र काव्य, कृष्ण मङ्गल, गोविन्द मङ्गल प्रभृति मङ्गल काव्य की सरलता, भाषा वैभव, छन्दो माधुरी एवं सर्वोपरि भाव हिल्लोलादि द्वारा चित्त चमत्कारिता वशतः जन मानस जितना समाकृष्ट हुआ है। विरुद काव्य स्थल विशेष में श्रुति मधुर होने पर भी किन्तु अतिशय कृत्रिमता हेतु मुष्टिमेय रसज्ञ की दृष्टि ही आकृष्ट उस के प्रति हुई है। उक्त कारण से ही उत्तर युग में इस जातीय काव्य रचना में शैथिल्य—अथवा अनादर दृष्ट होता है।

गौड़ीय वैष्णव वृन्द, कतिपय विरुदावली रचना द्वारा सुरसिक काव्य जगत् में चिरस्मरणीय, अतुलनीय एवं परम सम्माननीय एक कीर्त्तिस्तम्भ स्थापन किये हैं।

प्रथमतः श्रीरूप गोस्वामी चरण कृत 'सामान्य विरुदावली लक्षणम्, नामक ग्रन्थहै। इस में कथित है-व्रजनव युवराजकी गद्य पद्य मयी स्तुति माला ही विरुद नामसे अभिहित है। विरुदावली विविध लक्षणा क्रान्ता होती हैं, कलिका, श्लोक एवं विरुद् युक्त होना आवश्यक है। उस में नायक गत कीर्त्ति, प्रताप, वीर्य्य, सौन्दर्य्य एवं महत्त्व प्रभृति की वर्णना का प्राचुर्य्य होना चाहिये। कलिका के आदि एवं अन्त में एक एक निर्दोष पद्य होना आवश्यक है। एवं शब्दाडम्बर पूर्ण रचना पारिपाट्य होना भी आवश्यक है। विरुदावलीपाठक को --व्याकरणादि शास्त्र व्युत्पन्नादि सर्व गुण सम्पन्न होना चाहिये, अन्यथा श्रीहरि कर्त्तृक वह गृहीत नहीं होता है।

ताल द्वारा नियमित पद समूह को 'कला' कहते हैं। कला समष्टि के द्वारा कलिका रचित होती है। इस में प्रधानतः षट् भेद वर्त्तमान हैं, दो तीन प्रभेद युक्त कलिका द्वारा रचित होने से महा कलिका होती है, साधारण कलिका से इस में भेद यह है कि महाकलिका के पूर्व में श्लोक द्वय की स्थिति आवश्यकी है। एवं काव्य के शेषांश में श्लोक द्वय की रचना होनी चाहिये। ६४ कला से अधिक अथवा १२ कला से न्यून रूप से कलिका रचित नहीं होगी, यह ही साधारण नियम है।

महा कलिका चण्डवृत्त, द्वित्रादि गण वृत्तक त्रिभङ्गी वृत्त, मध्या, मिश्रा एवं केवल है। प्रत्येक विभेद समष्टि समन्वित होकर इसकी संख्या ४६ होती है। इस प्रकार पञ्चत्रिक से त्रिंशत् त्रिक के मध्य में ही विरुदावली रचित होगी, कलिका का परिमाण-- इस से अधिक अथवा न्यून नहीं होना चाहिये।

कलिका के आदि एवं अन्त में गुणोत्कर्ष वर्णनात्मक पद्य को श्लोक कहते हैं। महा कलिका का प्रारम्भ दो दो श्लोक द्वारा होना आवश्यक है। विरुदावली की रचना भी प्राय कलिका के तुल्य है, विशेष यह है कि कला परिमाण दो से दस संख्याबद्ध है। विरुद एवं कलिका के अन्त में वीर, धीर, श्रील, देव, नाथ, प्रभृति शब्द का प्रयोग होना चाहिये।

गौड़ीय गोस्वामी वृन्द द्वारा रचित समुपलब्ध विरुद काव्य विवरण—

श्रीरूप गोस्वामि चरण कृत—श्रीगोविन्द विरुदावली,
श्रीजीव गोस्वामि पाद कृत—श्रीगोपाल विरुदावली,
श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्ती पादकृत—निकुञ्ज केलि विरुदावली,





श्रीरघुनन्दन गोस्वामी कृत—श्रीगौराङ्ग विरुदावली,
श्रीकृष्णशरण कृत—श्रीकृष्ण विरुदावली,
एतद् व्यतीत –
श्रीकवि कर्णपूर कृत्—आनन्द वृन्दावन चम्पू (१५।२२०।२५६)
श्रीजीव गोस्वामी कृत—गोपाल चम्पू के शेषपूरण में विरुद च्छन्द से
स्तुति रचित है।

हरिदासशास्त्री













श्रीश्रीगौरांगविरुदावली

श्रीश्रीगौरहरि र्जयति ।

(१)

देवै स्तथा श्रुतिगणै र्महिमा न यस्य
प्रज्ञायते प्रभवता भवतापि कृत्स्नः ।
दुर्व्वाङ्मलीमसमति र्मनुजः कथं स्यात्
श्रीगौरचन्द्र ! भवतः स्तवनेऽस्य शक्तः ॥१॥
तथापि जगदीश्वर स्तवनमाचराम्येष यद्
यथामति कृपावशः श्रुतिपथं सकृत्तन्नय ।

श्रीश्रीगौरगदाधरौ विजयेताम् ।

श्रीश्रीगौरकृपासारणी

शिरोमणि प्रभु वन्दे गौरभक्तशिरोमणिम् ।
यत् प्रसादात् प्रवृत्तोऽयं मूकोऽपि शास्त्र-वाचने ॥

(१)

अथ सोऽयं कवि-केशरी श्रीरघुनन्दन-गोस्वामिपादः श्रीश्रीगौराङ्ग विरदावली-नामधेयं स्तुति-काव्यं वर्णयिष्यमाणः आदौ चण्डवृत्त-महाकलिकायाः प्रारम्भे श्लोकद्वयं रचयन् प्रथमतः दैन्येन स्वाशक्तिं विज्ञापयति देवैरिति । हे श्रीगौरचन्द्र ! देवैः तथा श्रुति-गणैः वेद-समूहैः यस्य भवतः महिमा माहात्म्यं न प्रज्ञायते प्रकृष्टरूपेण ज्ञातुं शक्यते तथा प्रभवता परम-शक्तिभृता भवता अपि कृत्स्नः सर्व्वः महिमा न प्रज्ञायते, अतः अस्य मत् समीपे स्फूर्त्ति-प्राप्तस्य भवतः स्तवने स्तव रचनायां दुर्व्वाक् दुष्टवाक्यश्च मलीमसा मलिना मतिः बुद्धि र्यस्य स च तथाभूतो मनुजः मानवः कथं शक्तः स्यात्,अत्यसम्भाव्यमेवैतदित्यर्थः विरुदलक्षणन्तु श्रीरूपगोस्वामि पादानां 'सामान्यविरुदावलीलक्षणे' ग्रन्थे द्रष्टव्यं ॥१॥

हे जगदीश्वर जगद्वासिभ्यः सर्व्वपुरुषार्थदातः ! तथापि मनुष्यत्वेन स्तवकरणा-सामर्थ्यादपि यत् एषोऽहं यथामति बुद्ध्यनुसारेण स्तवनं आचरामि रचयामि, त्वं कृपावशः सन् सकृत् वारमात्रमपि श्रुतिपथं कर्णगोचरं तत् नय कुरु । तत्र दृष्टान्तयति—

वर्धित (१)

हे गौरचन्द्र ! तुम्हारी महिमा देवगण एवं श्रुति गणके पक्षमें भी जब अगोचर है, यहाँतक कि स्वयं तुमने भी जिस को सम्यक् रूपसे नहीं जाना, तब दुष्ट वाक्य, एवं दुष्ट चित्त सम्पन्न मादृश मनुष्य कैसे तुम्हारास्तव करने में सक्षम होंगा ? (१) तथापि हे जगदीश्वर ! निज बुद्धि के अनुरूप दुःसाहस पूर्वक, तुम्हारी स्तव रचनमें जो मैं प्रवृत्त हो

अचक्षुरशुभस्वरो नदति कोऽपि यच्चातकः
शृणोति न हि किन्तु तत् करुणबुद्धिरम्भोधरः ॥२॥

चण्डवृत्तस्य नखे "वर्द्धितम्"

सत्यपरमसुख शुद्ध समुज्ज्वल नित्यरुचिरतर विश्वगपुद्गल
सर्व्वविबुधवरबुद्धि-सुदुर्गम सर्व्वहृदयगत निर्म्मल विभ्रम
विप्रजननमभिलब्धसमुद्भव वप्रहृदयधृतबुद्धिमदुद्भव

अचक्षुः विकृताक्षः अशुभस्वरः कर्कशकण्ठः सन् कोऽपि मेघजलार्थी चातकः यत् नदति शब्दायते, करुणमतिः सकारुण्यः अम्भोधरः मेघः तत् न हि शृणोति किन्तु ? अवश्यमेव शृणोति—जलधारा वर्षणेन पिपासो श्चातकस्य उत्कण्ठां च दूरीकरोतीति भाव ॥२॥

अथ कलिकया लीलां वर्णयन् तस्य नामोद्दिशति—**चण्डवृत्तेति** । एतेषां लक्षणादिकन्तु 'विरुदलक्षणे' विस्तरतोऽन्वेषणीयं । हे देव—दानादिना गुणयुक्त ! मम चित्तभुवि भ्रम, विहरेत्यर्थः । कीदृशोऽसौ-सत्य सत्स्वरूप; परमसुख आनन्दमय, यद्वा परः सर्व्वश्रेष्ठः कृष्णश्च मा सर्व्वलक्ष्मीमयी श्रीराधा च ताभ्यां मिलितवपुष्क इत्यर्थः, सुख आनन्द-स्वरूपेति च पृथक् पदम् । शुद्ध परमपवित्र 'परिभवघ्ने' त्युक्तत्वात् इन्द्रिय-कुटुम्बादि-जनित-तिरस्काररहितेति भावः । सम्यक् उज्ज्वल वपुषा तप्तहेमकान्तिधारिन् भावेन मूर्त्तमहाशृङ्गारेति वा । नित्य प्रकटाप्रकटलीलयोः सदा वर्त्तमान । रुचिरतर स्वस्य श्रीकृष्ण-स्वरूपादपि प्रकटित-महौदार्य्यादि-वैशिष्ट्यानां सद्भावैः अधिकतरं जनमनः प्राणादिकानामाकर्षक । विश्वग् सर्व्वव्यापिन्, पुद्गल सुन्दराकार । यद्वा—विश्वगः सर्व्व-व्यापि पुद्गलो आत्मा देहो वा यस्य । 'सर्व्वव्यापी सर्व्वभूतात्मरात्मा', 'विष्टभ्याहमिदं कृत्स्न' मित्याद्युक्तत्वात् । सर्व्वेषां विबुधवराणां प्राज्ञ-शिरोमणीनामपि बुद्धिभिः मनीषाभिः सुष्ठु दुर्गम दुरवबोधमहिम, यद्वा सर्व्वेषां देवश्रेष्ठानामपि अतर्क्यप्रभाव । अथच सर्व्वेषां हृदयेषु गतः प्रकटीकृतः निर्म्मलः विशुद्धः बिभ्रमः शोभा कान्तिः विहारो वा यस्य । यद्वा हे सर्व्वहृदयगत सर्वभूतान्तर्य्यामिन्, हे निर्मलविभ्रमेति पृथक् सम्बोधनं । विप्रस्य जगन्नाथ-मिश्रस्य जननं वंशमभिलक्षीकृत्य लब्धः प्राप्तः समुद्भवः प्रादुर्भावः येन

रहा हूँ, कृपालु होकर उसका श्रवण अन्ततः एक वार भी करो—यह प्रार्थना है । विकृत नयन एवं कर्कश कण्ठ चातक जब जलार्थी होकर चित्कार करने लगता है, तब क्या करुणामय जलधर उस को नहीं सुनता है ? (२) हे सत् स्वरूप, आनन्दमय, अथवा (परम) शब्द से श्रीराधाकृष्ण मिलित वपुः, अतएव सुखमय, परम पवित्र, इन्द्रिय कुटुम्बादि जनित तिरस्कार रहित, सम्यक् उज्ज्वल, अर्थात् वर्ण में तप्त हेम कान्ति, एवं भाव में मूर्त्त महाशृङ्गार नित्य, अर्थात् प्रकट एवं अप्रकट लीलामें सतत वर्त्तमान । रुचिरतर, अर्थात् निज श्रीकृष्ण स्वरूप से भी महा उदारता प्रभृति वैशिष्ट्य आविष्कार करने के कारण सब के चित्त प्राण प्रभृतिका अधिकतर आकर्षक हो, विस्वग्, सर्वव्यापिन् पुद्गल-सुन्दराकार, अथवा सर्वव्यापी पुद्गल आत्मा अथवा देह विशिष्ट, सकल देवता, एवं प्राज्ञ चूड़ामणि वृन्द की बुद्धि का अगम्य हो, अथच सब के हृदय में ही स्वीय विशुद्ध शोभा, कान्ति अथवा विहारावलि को प्रकट करके श्रीजगन्नाथ मिश्र के वंशमें आविर्भूत हुये हो, अतएव जनक के हृदय में उत्तरोत्तर वृद्धिशील महानन्दराशि स्थापन किये हो ।

निर्जर-विरचित–दिव्यमहस्तव   दुर्जर-कलिमलशष्पबृहद्दव
दुष्ठुचरितनर दुर्लभ दर्शन   सुष्ठु हृदयजनदत्त-विमर्शन
नर्म्मविहृतिपरितर्पितसत्तम   शर्म्मकरण मम चित्तभुवि भ्रम ।।३

सेवक-चातक-सुखदा कलिदव-दवथु-प्रशान्तिकृच्छीता ।
नामेति कीर्त्तनवृष्टि स्तव जीयात् श्रीशचीसुताम्भोद ।।४

भजनावर्त्तन' सदनानर्त्तन ।
जगतीरक्षक–कलिभी-तक्षक ।। ।। धीर ।। ५

जगन्नाथविप्रवंशे आविर्भूतेत्यर्थः । अतो वप्रस्य पितुः हृदये धृताः प्रदापिताः (अन्तर्भावित-ण्यर्थः) वृद्धिमन्तः क्रमशो वृद्धिशीलाः उद्धवाः उत्सवाः येन । निजरोभिः देवैः विरचिताः दिव्यमहाः महामहोत्सवाश्च स्तवाश्च यस्य जन्मसमयादिषु इति भावः । दुर्जरा दुःछेद्या अपरिहार्य्या ये कलिकलाः कलिकालोचित-कलुषाणि ते एव शष्पाणि तृणानि अगणितत्वात्, परमसुलभत्वाच्च । तेषां पक्षे बृहद्दव महादावाग्निस्वरूप–सकल-कलिकलुषनाशकेति भावः । दुष्ठुचरिताः जघन्यचरित्राः ये नराः तेषां पक्षे दुर्लभं दर्शनं यस्य अथच सुष्ठुहृदयाः साधुचरित्राः ये जनाः तेषु दत्तं विमर्शनं भक्तियोगमयी विचार-बुद्धिः येन । नर्म्मविहृतिभिः परिहासरसमय-विहारादिभिः परितर्पिताः सन्तोषिताः सत्तमाः साधुवर्य्या येन । हे शर्म्मणां निखिल-कल्याणानां करण समर्पक । मम हृदये विलसेति पूर्व्वेणान्वयः ।।३।।

कलिकान्ते श्लोकमाह– सेवकेति । हे श्रीशचीसुत एव अम्भोद मेघ ! तव नाम इति प्राकाश्ये कीर्त्तनरूपा वृष्टिः जीयात् सर्वोत्कर्षेण विराजमाना भवतादित्यर्थः । कीदृशी सा-सेवका एव चातका स्तेषां सुखदानकारिणी,कलिरेव दवदवथुःदावानलःसर्व्वथा प्रदाहकत्वात्, तस्य प्रकृष्टरूपेण शान्तिकृत्, 'भवमहादावाग्नि-निर्व्वापक:''- इत्युक्तत्वात् । शीता सुशीतला च ।।४।। श्लोकान्ते विरुदं रचयति-भजनेति । भजनेषु नवविधा भक्तिमार्गेषु सर्व्वान् आवर्त्तयतीति स्वयमाचर्य्य प्रचारक इत्यर्थः । सदनेषु स्वस्य भक्तानां वा गृहेषु नर्त्तनं यस्य । जगतीनां चतुर्द्दशानां रक्षक प्रेमभक्तिप्रदानेन सुशान्तिकृदित्यर्थः । कलेर्या भीः भयं तस्याः तक्षक नाशकेति भावः ।।५।।

उस समय देवतावृन्द, महामहोत्सव के सहित तुम्हारी दिव्य स्तवावलि का कीर्त्तन किये हैं । अपरिहार्य्य कलिकलुष रूप तृणराशि के पक्ष में तुम महादावाग्नि स्वरूप हो, दुष्ट चरित्र सम्पन्न जनगण तुम्हारे दर्शन लाभ नहीं कर पाते हैं । अथच, साधुगण के चित्त में भक्ति योगमयी विचार बुद्धि का स्थापन तुम ही करते हो, परिहास रसमय विहारादि द्वारा तुम साधुश्रेष्ठ वृन्द को सन्तुष्ट करते रहते हो, तुम, निखिल कल्याण गुण समर्पक हो, हे गौराङ्ग ! मेरे हृदय में तुम विलसित हो (३) हे श्रीशचीसुतरूप जलधर ! सेवक रूप चातक वृन्द को सुख प्रदान कारी कलिरूप दावानल निर्वापक एवं सुशीतल तुम्हारी नाम रूप कीर्त्तन वृष्टि जय युक्त हो (४) नवविधा भक्ति का आचरण, तुमने स्वयं करके जन निकर को शिक्षा प्रदान करते हो, निज गृह में एवं निज भक्त वृन्द के भवन में तुम नृत्य करते हो, प्रेम भक्ति प्रदान के द्वारा चतुर्दश भुवन का रक्षक एवं कलिमय विनाशक तुम ही हो (५)

(२)

स्फुटत्कनककेतकी-कमल-केशराङ्गद्युतौ
शरच्छशधरच्छटामदविड़म्बि-रम्यानने ।
स्फुरत्सुरतरङ्गिणी- तटविहारशीले प्रभौ
ममास्तु रतिरुत्तमा भवति गौरचन्द्रानिशम् ।। वीरभद्रः । ६

उद्यद्विद्युद्द्युतिकृतजन सुख । नव्यस्तव्यद्विजपतिवरमुख
फुल्लच्चिल्लिप्रसित युवतिकुल दृष्टि स्पृष्टि स्थगित हृदय बल ।
तप्तत्रप्त प्रबल भुजगभुज । हस्तन्यस्त स्फुटतर सरसिज ।

---

(२)

अथ वीरभद्र--कलिकारम्भे श्लोकं रचयति– हे गौरचन्द्र ! मम उत्तमा ज्ञानकर्म्माद्य विमिश्रा विशुद्धा रतिः प्रेमभक्तिः भवति अत्रभवति, अनिशं सर्वदा अस्तु भवेदिति प्रार्थये, कीदृशे भवति--स्फुटन्ती विकशोन्मुख या कनक-केतकी तस्याः कमलस्य च केशराः किञ्जल्काः इवाङ्गद्युति देहकान्ति र्यस्य तस्मिन्, शरदः शरत्कालस्य यः शशधरश्चन्द्र स्तस्य छटानां कान्तिकन्दलीनां मदस्य गर्व्वस्य विड़म्बनाकारि रम्यं आननं वदनं यस्य तस्मिन्, स्फुरन्ती देदीप्यमाना या सुर-तरङ्गिणी गङ्गा तस्याः तटे विहारशीले च प्रभौ परमसुन्दरे भवति मतिरस्तु ।।६।। अथ कलिकां रचयति—उद्यदिति । उद्यती उदयं गच्छन्ती या विद्युत् सेव द्युतिः कान्ति स्तया हेतुभूतया कृतं जनानां भक्तानां सुखं येन । नव्य चिरनवीन अतः स्तव्य प्रशंसनीय । यद्वा– नव्यः नवीनश्चासौ स्तव्यश्चेति यो द्विज-पतिश्चन्द्रमाः तस्मादपि वरं परमसुन्दरं मुखं यस्य । फुल्लन्ती विकशन्ती या चिल्लिः भ्रूः तया प्रकृष्टरूपेण सितं वद्धं युवतिकुलं येन, तथा तासां दृष्ट्या स्वाभिलाष-सूचकदर्शनेन च स्पृष्टया तासां श्रीविग्रहादिकस्य स्पर्शनेन च स्थगितं स्तम्भितं हृदयं मानसञ्च बलं स्थाम च यस्य । स्वसौन्दर्य्य-हरणेन तप्ताः खेदिताः तथा स्वाधिकसौन्दर्य्य दर्शनेन त्रप्ता

वीरभद्र (२)

हे गौरचन्द्र ! तुम्हारी अङ्गकान्ति, प्रस्फुटित स्वर्ण केतकी एवं कमल केशर के सदृश उज्ज्वल पीतवर्ण हैं, मुख की मनोरम शोभाका दर्शन से शारदीय पूर्णचन्द्र कान्ति निवह की विड़म्बना होती है । देदीप्यमाना सुरधुनी तट विहारी परम सुन्दर महाप्रभु ! तुम्हारे प्रति मेरी उत्तम प्रेमभक्ति सतत उदित हो ।।६।।

उदीयमान विद्युत् पुञ्जतुल्य तुम्हारी कान्ति कन्दली के सन्दर्शन से भक्तवृन्द परमानन्दित होते है । तुम चिरनवीन हो, अतएव चिर प्रशंसनीय हो, अथवा तुम्हारे मुखमण्डल नवीन एवं प्रशंस्य चन्द्रमा से भी परम सुन्दर है । तुम्हारी भ्रूभङ्गीके दर्शनसे युवतिवृन्द का मन प्रकृष्ट रूप से आबद्ध हो जाता है, एवं उसके साभिलाष सूचक दर्शन से एवं श्रीविग्रहादि के स्पर्शन से तुम्हारे मन एवं बल स्तम्भित हो जाते हैं, निज सौन्दर्य्यापहृत होने से अनुतप्त, एवं निज अपने से भी अधिकतर सौन्दर्य्य को देखकर कालीय प्रभृति प्रबल नागगण भी तुम्हारे बाहु युगल को देखकर लज्जित होते हैं। तुम्हारे हस्त में विकसित लीलापद्म वर्त्तमान है, अथवा प्रफुल्ल कमल विनिन्दित तुम्हारे

बिभ्रत् शुभ्रस्रजमुरसि सुभग नित्यप्रत्यग्रविशदपटयुग ।
रक्तव्यक्त स्मितवर शतदल बद्ध स्पर्द्धप्रमसृणपदतल ।
पुष्प्यत् पुष्पस्रगधिक रुचिधर मय्यक्षय्य प्रणयमभि वितर ॥
देव ॥७

श्रीवासाङ्गन-मध्यदुग्धजलधौ सद्भक्तमीनाकुले
भ्राम्यन् कीर्त्तन-सत्सुधां प्रकटयन् संसाररोगापहम् ।
शुद्धस्वर्णतनुच्छटा-समुदयै र्विद्योतयन् दिक्तटीः
श्रीगौराभिध—मन्दरः प्रणयतान्मन्नेत्रचित्तोत्सवम् ।८

लज्जिताश्च प्रबलाः महत्तमाः कालीयाद्याः भुजगाः सर्पाः याभ्यां तौ भुजौ यस्य । हस्ते न्यस्तं अर्पितं स्फुटतरं विकशिततरं सरसिजं लीलापद्मं यस्य । यद्वा हस्ताभ्यां नितरां अस्तं दूरीकृतं न्यक्कृतं प्रफुल्लं कमलं येन, कमल-शोभा-विनिन्दिहस्त इत्यर्थः । उरसि वक्षसि शुभ्रस्रजं श्वेतमाल्यं बिभ्रत् धारयन् । सुभग परमसुन्दर । नित्यं प्रत्यग्रं नूतनं विशदं शुभ्रं च पटयुग वस्त्रयुगलं परिधेयं चोत्तरीयञ्च यस्य । रक्त अनुरक्त भगवति स्वभक्तेषु वा, व्यक्त प्राज्ञ, तथा स्मितवरेण मृदुमधुरसुहास्येन शतदलैः पद्मैः सह बद्धा आरब्धा स्पर्द्धा जिगीषा यस्य । एवं प्रकृष्टरूपेण मसृणं स्निग्धं पदतलं यस्य । यद्वा—रक्तेतितलान्तमेक-पदं, रक्तं लोहितं व्यक्तं कान्तिः (वि-अन्जू कान्तौ भावे क्तान्तः) यस्य तच्च स्मितं ईषद्-विकसितञ्च यत् शतदलं पद्मं तस्य बद्धस्पर्द्धं जयशीलं प्रमसृणं पदतलं यस्य । पुष्प्यन्ति विकसन्ति यानि पुष्पाणि तेषां स्रक् माल्यं तस्याः सकाशादपि अधिकं यथा स्यात्तथा रुचिधर सुषमामण्डितेत्यर्थः । हे देव । मयि अक्षय्यं क्षयरहितं प्रणयं प्रेम अभिआधिक्येन वितर प्रयच्छ । स्वस्य भगवत्-कर्त्तृक-प्रेमप्रदानायोग्यपात्रत्व-मननात् सम्प्रदानाविवक्षया मयीत्युक्तं ॥७॥ कलिकान्ते श्लोकमाह—श्रीवासेति । सद्भक्ता भक्तवर्य्या एव मीना स्तैराकुले परिव्याप्ते श्रीवासाङ्गन-मध्यदेश एव दुग्धजलधिः क्षीरसमुद्र स्तस्मिन् भ्राम्यन् इतस्ततो नर्त्तनरसेन पर्य्यटन् तथा संसारः जन्ममरणे एव रोगः व्याधिः तमपहन्ति नाशयतीति जन्ममृत्यु— निवारिकामित्यर्थः कीर्त्तन एव सत्सुधां अत्युत्-कृष्टामृतं प्रकटयन् प्रादुर्भावयन् तथा शुद्धस्वर्णतनुच्छटा-समुदयैः दिक्तटीः दश दिशः विद्योतयन् उद्भासयन् श्रीगौराभिधः गौरनामकः मन्दरः मम नेत्रयो श्चित्तस्य च उत्सवम् आनन्दातिरेकं

हस्त युगल हैं । वक्षोदेश में श्वेत माल्य धारण निबन्धन तुम परम सुन्दर हुये हो, नित्य नूतन श्वेत पट्ट वस्त्र तुम्हारे परिधेय एवं उत्तरीय वसन हैं । तुम भगवान् में अथवा निज भक्त में अनुरक्त हो, सुव्यक्त प्राज्ञ भी हो, एवं मृदु मधुर हास्य से मानों शत शत शतदल पराजित हो रहे हैं । तुम्हारे पदतल अति मसृण है, विकासोन्मुख पुष्पयुक्त माल्य से भी अधिकतर सुषमा मण्डित है । हे गौर ! तुम मुझ को अक्षय प्रेमदान करो ॥७॥

सद्भक्त वृन्द रूप मीन समूह द्वारा परिव्याप्त श्रीवासाङ्गन मध्यदेश रूप क्षीर समुद्र में इतस्ततः पर्य्यटन करते करते शुद्ध स्वर्णाभ अङ्गच्छटा समुदय द्वारा दशदिक् उद्भासित करतः एवं संसार रोग अर्थात् जन्म मृत्यु विनाशन कारी कीर्त्तनरूप अत्युत्कृष्ट सुधाप्रकटन पूर्वक श्रीगौराङ्ग नामक मन्दर पर्वत मदीत नेत्र चित्त को उत्सव प्रदान

विस्फार-माधुर्य्य दुष्पारताधुर्य्य
सुप्रातषाड्गुण्य विख्यात-साद्गुण्य ॥ धीर ॥९

(३)

आविर्भूता धरणिवलये श्रीनवद्वीप-मेरोः
कुन्दश्रेणी-परिभवरुचिः शीतला तापहन्त्री ।
गानाद् ध्यानात् सकलकलुषस्तोमहन्त्री त्रिलोकीं
श्रीगौराङ्ग प्रभुवर भवत्-कीर्त्तिगङ्गा पुनाति ॥ समग्रः ॥१०

अदभ्र सुन्दर' स्वचित्त कन्दर-
प्रविष्ट' किङ्कर- प्रकृष्ट शङ्कर ।

प्रणयतात् जनयत्विति-तात्पर्य्यम् ॥८॥ श्लोकान्ते विरुदं रचयति—विस्फारेति । विस्फारं सुविपुलं यत् माधुर्य्यं तस्य आनन्त्यात् दुष्पारताया, दुःखेनापि अतिक्रमणविषये धुर्य्य धुरन्धर अर्थात् शेषोऽपि तव माधुर्य्य–समुद्रस्य वर्णनविषये नाल, किमुतान्ये !! सुप्रातानि सुष्ठु पूर्णानि षाड्गुण्यानि ऐश्वर्य्यवीर्य्यादीनि यत्र स्वयं भगवानित्यर्थः । विख्यातानि सुप्रसिद्धानि साद्गुण्यानि दया दाक्षिण्यादीनि च यस्य ॥९॥

(३)

अथ **समग्र**—कलिकारम्भे श्लोकमाह— आवीति । हे गौराङ्ग ! हे प्रभुवर महाप्रभो ! भवतः कीर्त्तिः एव गङ्गा त्रिलोकीं जगत्त्रयं पुनाति पवित्रीकरोति । किम्भूतासौ ? श्रीनवद्वीपरूप-सुमेरोः सकाशात् धरणिवलये भूमण्डले आविर्भूता, कुन्दश्रेणीनां परिभवशीला रुचिः कान्ति र्यस्याः तथाभूता, शीतला अत आध्यात्मिकादितापत्रयस्य हन्त्री नाशिका । मज्जनादिकमनपेक्ष्यैव गानात् ध्यानाच्च सकलानां सर्व्वविध-मनुजानामेव कलुषस्तोमानां महापातकादीनामपि हन्त्री नाशकरीत्यर्थः ॥१०॥ अथ कलिकां रचयति अदभ्रेति । अदभ्रसुन्दर परमसुन्दर । स्वेषां भक्तानां चित्तमेव कन्दरं गुहा तस्मिन् प्रविष्ट

करे—यह ही प्रार्थना (८) तुम्हारी सुविपुल माधुर्य्यराशि की वर्णना स्वयं अनन्त देव भी परिपूर्ण रूप से करने में अक्षम हैं। ऐश्वर्य्य वीर्य्यादि षड्विध गुण मण्डित हो, अर्थात् तुम ही स्वयं भगवान् हो। दया दाक्षिण्यादि सद्गुणावलि भी तुम को अवलम्बन कर सुप्रसिद्धि को प्राप्त कर चुकी हैं ॥९॥

समग्र (३)

हे महाप्रभो ! श्रीगौराङ्ग ! तुम्हारी कीर्त्ति रूपा गङ्गा त्रिभुवन को पवित्र कर रही है। वह श्रीनवद्वीप स्वरूप सुमेरु पर्वत से प्रवाहित होकर पृथिवी में आविर्भूत हुई है, वह कुन्द कुसुम राजि से भी अति शुभ्र, शीतल एवं आध्यात्मिकादि तापत्रय निवारक है। उस में अवगाहनादि की अपेक्षा न करके ही गान, ध्यान अथवा श्रवण मात्र से ही सर्व लोकों की पापराशि को विदूरित करती है (१०) हे परम सुन्दर ! तुम भक्त वृन्द के चित्त कन्दर में प्रवेश कर निवास करते हो। भृत्य वृन्द को निखिल कल्याण दान करते हो, तुम्हारे भक्त वृन्द की जो मानव वन्दना करते हैं, तुम उन सब को आनन्द प्रदान करते हो तुम्हारे प्रशस्त चञ्चल नयन कोण, इतस्ततः सञ्चालित हो रहा है।

स्वभक्त वन्दन- प्रवृत्त चन्दन ।
प्रशस्त चञ्चल- भ्रमद् दृगञ्चल ।
प्रजल्प-खण्डित प्रगल्भ पण्डित-
स्थविष्ठ दम्भक' स्वभक्ति-लम्भक ॥ देव ॥११

पापानि प्रतिगृह्य माधव-जगन्नाथाख्ययो विप्रयो
स्ताभ्यां कारुणिकः सुदुर्लभतरां यः प्रेमभक्तिं ददौ ।
पुण्यस्यैव समर्पणेन सुजने कुत्रापि संतुष्यता
लोके नाप्यमरेण गौर भवत स्तस्योपमा संभवेत् ॥१२

कलिभी-खण्डक' धरणी-मण्डक ।
जननीकिङ्कर' गृहिणीशङ्कर ॥ धीर ॥१३॥

प्रवेशकृत् । किङ्कराणां भृत्यानां प्रकृष्टरूपेण शङ्कर कल्याणदायक । स्वभक्तवन्दने प्रवृत्तानां चन्दन आह्लादक । प्रशस्तश्च चञ्चलश्च भ्रमन् च दृशोः अञ्चलः प्रान्तदेशो यस्य । प्रजल्पेन सुमधुर-वाक्येन खण्डितः दूरीकृतः प्रगल्भस्य प्रतिभान्वितस्य दिग्विजयिनः पण्डितस्यापि स्थगिष्ठः अतिमहान् दम्भः गर्व्वः येन । स्वार्थे कप्रत्ययः । अतः स्वभक्तिमपि लम्भयति प्रापयतीति तथा ॥११॥ कलिकान्ते श्लोकमाह—पापानीति । हे गौर ! यः कारुणिकः कृपामयो भवान् माधव-जगन्नाथ-नामकयोः विप्रयोः पापानि प्रतिगृह्य गृहीत्वा ताभ्यां सुदुर्लभतरां उन्नतोज्ज्वलरसगर्भामिति यावत् प्रेमभक्ति ददौ— तस्य भवतः उपमा साहश्यं अमरेण देवेन सहापि न सम्भवेत् । तत्र हेतुगर्भ-विशेषणमाह—लोके पृथिव्यां कुत्रापि देशकाल-पात्र-विशेषं पर्य्या-लोच्यैव सुजने सद्धर्म्मपरायणे नतु दुष्कर्म्मकारिणि पुण्यस्यैव नतु मुक्तिभक्त्यादीनां समर्पणेन संतुष्यता सम्यक् तृप्तेन देवेन साकं कथमस्य भक्त्यादीनां समर्पणेन संतुष्यता सम्यक् तृप्तेन देवेन साकं कथमस्य तुलना सम्भवेदिति महामहिमवत्त्वमस्य महाप्रभोरिति ध्वनितम् ॥१२॥ श्लोकान्ते विरुदमाह – कलीति । कलियुगस्य कामक्रोधादिभ्यः या भीः भीतिः तस्याः खण्डक नाशक, नामधामभक्त्यैक-तमस्यापि समाश्रयेण तन्निवर्त्तनात् । धरणीं पृथिवीं मण्डयति भूषयतीति सर्व्वावतारा-वतारित्वेन तस्यामाविर्भावात्, नृत्यकलाभिः यत्र स्वचरणकमल-विन्यासात् महाप्रेमरस-भरेण तत्र शायितत्वाद्वा । जनन्याः शचीदेव्या किङ्कर आदेशवह, गृहिण्याः विष्णुप्रियायाः

तुम सुमधुर वाक्य द्वारा प्रति भान्वित दिग्विजयी पण्डित की अति महान् गर्वराशि को भी दूरीकृत किये हो, एवं उसको निज चरण नलिन युगल में भक्ति प्रदान किये हो ।११।

हे गौर ! महाकृपालु तुम जगाइ माधाइ नामक ब्राह्मण द्वय को, उसकी पाप राशिको ग्रहण पूर्वक सुदर्लभतरा अर्थात् उन्नतोज्ज्वलरसगर्भा प्रेम भक्ति प्रदान किये हो । तुम्हारी तुलना क्या देववृन्द के सहित हो सकती है ? कारण, दिखाई देता है, कि इस पृथिवी में देववृन्द—स्थल विशेष में देश काल पात्र विवेचनाकर केवल मात्र सद्धर्मपर जनको ही पुण्यार्पण करके, मुक्ति अथवा भक्ति न देकर ही सम्यक् तृप्त होते हैं । किन्तु तुम सर्वविध विवेचना रहित होकर ही प्रेमभक्ति प्रदान करते हो, अहो महा महिमा !!! ॥१२॥ तुम कलिभयनाशक, धरणी भूषण हो तुम, जननी शचीदेवी की आज्ञा का

(४)

गभीरगुरुगर्जनै र्दु रितदृप्तदन्तावलान्
मनोजमद–मत्सर-प्रबलभल्ल-मल्लानपि ।
निरस्य विषयैषणावृक-विमर्द्दिनामन् नृणां
सदा हृदय-कन्दरे निवस गौर-पारीन्द्र हे ।।अच्युत।।१४

जय जय गौर प्रियतमपौर
व्यसन-सुचौर स्फिर नव शोर-
च्छवि वर वास श्चटुल-विलास ।
प्रमुदित-दास व्रजकृतरास ।
स्फुरदलिजाल प्रतिभट-बाल ।
द्य ुतिजितताल द्विजपतिभाल ।

शङ्कर प्रियकृत् ।।१३।।

(४)

अथाच्युत— कलिकारम्भे श्लोकमाह–गभीरेति । हे गौर–पारीन्द्र गौरसिंह ! नृणां हृदय-कन्दर हृदय-गुहायां सदा निवस । किं कुर्व्वन् निवसामीति चेत्तदाह गभीराणि च गुरुणि च यानि गर्जनानि तैः करणैः दुरितानि दुष्कृतय एव दृप्ताः गर्व्विताः दन्तावलाः हस्तिन तान्, तथा मनोजश्च मदश्च मत्सरश्च ते एव प्रबलाः भल्लमल्लाः भल्लुक–प्रवरा स्तांश्च निरस्य दूरीकृत्य निवस । मनुजहृदये वसत स्तव हुङ्कारेणैव पापानि कामादयश्च दूरीगच्छन्तीति भावः । अपरञ्च–तव नाम–माहात्म्येन विषय–वासनापि निरस्यतीत्याह–विषयेषु या एषणा कामना सैव वृकः तस्य विमर्द्दनकारि नाम यस्य हे तथाभूत प्रभो ! कृपया जीवहृदि निबस ।।१४।। कलिकां रचयति–जयेति । हे गौर ! त्वं जय सर्व्वोत्कर्षेण विराजमानो भव । हर्षातिरेके वीप्सा । प्रियतमाः पौराः नवद्वीप-पुरवासिनः यस्य । व्यसनानां दुःखानां सुष्ठु चौर। स्फिरा प्रचुराः या नव सूर्य्यच्छवयः तद्वद् वरं वासो यस्य । चटुलः मनोरमः विलासो यस्य । प्रमुदिता ये दासव्रजाः तै सह कृतो रासः क्रीड़ा येन, यद्वा-प्रमुदिता दासा यस्य, व्रजे कृतो रासो येनेति पदद्वयं । स्फुरतः

पालन एवं गृहिणी विष्णु प्रिया का हितकारी हो ।।१३।।

अच्युत

हे गौर सिंह ! तुम, मानववृन्द के हृदय कन्दर में सतत निवास करते हो, तुम्हारे गुरु गम्भीर गर्जन से दुष्कृति रूप गर्वित हस्ति समूह एवं काम, मद, मात्सर्य्य प्रभृति प्रबल भल्लुक राजगण भी दूर में अपसारित हो जायेंगे । अधिकन्तु—तुम्हारे नाम प्रभाव से ही विषय वासनारूप व्याघ्री भी विमर्द्दित होकर पलायन करेगी । अतएव हे करुणालय जीव हृदय में निवास करो ।।१४।। हे गौर ! तुम्हारी जय हो, सर्वोत्कर्ष के सहित विराजमान होओ, नवद्वीप पुरवासीगण तुम्हारे प्रियतम हैं, तुम सकल दुःखहारी हो, नव सूर्य्य के घन कान्ति राशिवत् तुम्हारे वसन अति सुन्दर है । तुम्हारी विलासावलि भी अति मनोरम है । आनन्दितदासगण के सहित तुम रास क्रीड़ा करते रहते हो, अथवा

श्रितशुभवेश स्मितशशिलेशः ।
प्रमुदितदेश प्रणयि महेश ।
द्विजसुत सीर- ध्वजनुत । नीर-
म्रदित पटीर स्थगित-शरीर ।
क्षितिसुरजात । क्षितिनुतमात
व्रजरसदात स्तवकितशात ॥ देव॥ १५
निजजन-परिवीते देववर्गेण गीते
प्रकृतिबलमतीते प्रेमभक्त्यभ्युदीते ।
रतिरघकृतभीते रस्य संत्यक्तनीते
रपि शशिशतमीते श्रीहरौ मेऽस्तु पीते ॥१६॥

स्फूर्त्तिमतः अलिजालस्य भ्रमरसमूहस्य प्रतिभटः समः बालः केशो यस्य । द्युत्या कान्त्या जितं तालं हरिताल येन । द्विजपतिश्चन्द्रः इव भालं ललाटं यस्य । श्रितः गृहीतः शुभः वेशः येन । स्मितं मृदुमधुरहास्यमेव शशिनः चन्द्रस्य लेशो ज्योत्स्ना इत्यर्थः यस्य । अतः प्रमुदितः आनन्दितः देशः देशवासी येन । प्रणयी प्रीतिकारकः महेशः यत्र, यद्वा प्रणयी चासौ महेशः सर्व्वं पुरुषार्थ–दानकारी चेति कर्म्मधारयः द्विजसुतो यः सीरध्वजो नित्यानन्दः तेन नुत स्तुत । नीरेण जलेन मृदूकृतो यः पटीर श्चन्दन स्तेन स्थगितमावृतं शरीरं यस्य । क्षितिसुरे ब्राह्मणवंशे जात प्रादुर्भूत । क्षित्या पृथिव्या अर्थात् तत्रत्यजन-वर्गेण नुता रत्नगर्भेति स्तुता माता यस्य । व्रजस्य यो रसः दास्यादिचतुष्टयं वा शृङ्गाररसो वा तस्य दानकारिन् । स्तवकितं पुञ्जीभूतं शातं सुखं यस्य ॥१५॥ कलिकान्ते श्लोकमाह-निजेति । अघकृतेभ्यः पापकार्य्येभ्यः भीतिः भयं यस्य तथापि संत्यक्ता नीति येन एवम्भूतस्यापि अस्य मम पीते गौरवर्णे श्रीहरौ रतिः प्रेमास्तु । कीदृशि तस्मिन्–निजजनैः भक्तगणैः परिवीते परितो वेष्टिते, देववर्गेण गीते संस्तुते, प्रकृतिबलमतीते मायातीते अथच प्रेमभक्त्या एव अभ्युदीते सर्व्वत्र उदयशीले । शशिनां शतेभ्योऽपि शीते सुशीतले च । 'मीत' इति पाठे तु मीञ बधे निष्ठा-प्रत्ययः शतशतशशि-जय-कारिणीत्यर्थः आयातश्च ।१६

तुम्हारे दासगण आनन्दमय हैं, एवं तुम ही पूर्व में व्रज में रासक्रीड़ा किये थे । तुम्हारे केशकलाप स्फूर्त्ति प्राप्त भ्रमर समूह के समान हैं । तुम स्वीय वर्ण के द्वारा हरि ताल को भी पराजित किये हो, चन्द्रवत् तुम्हारे ललाट पटल है, परम शुभ्र वेशधारण किये हो, तुम्हारे मृदु मधुर हास्य से कितने शत शत चन्द्र कण प्रकट हो रही है । सुतरां देशवासी सब आनन्दित हो रहे हैं, महेश, तुम्हारे प्रीति कारक है, अथवा तुम प्रणयी हो अथच सर्व महा पुरुषार्थ दाता हो । ब्राह्मण वंशोत्पन्न बलदेव अर्थात् नित्यानन्द तुम्हारी स्तुति करते रहते हैं । जल द्वारा स्निग्धी कृत चन्दन चर्च्चाद्वारा तुम्हारे शरीर आवृत है, तुम ब्राह्मण वंशमें प्रादुर्भूत हुये हो । विश्ववासी जन निकर तुम्हारी माकी प्रशंसा 'रत्नगर्भा' शब्द से करते हैं, तुम व्रजरसपानकारी एवं प्रचुरतर सुखभोगी हो, ॥१५॥ निज परिजन गण वेष्टित, देववृन्द कर्त्तृक संस्तुत, मायातीत, अथच प्रेमभक्ति बल से सर्वत्र उदयशील हो, शत शत चन्द्र की अपेक्षा भी सुशीतल हो, मैं पापानुष्ठान में भयशील होते

गङ्गावरतट　　रङ्गातुलनट
कम्पाकुलतर　　शम्पारुचिधर ॥ धीर ॥१७॥

(५)

खल-बलिकलिकाल-स्थुलहेलिप्रतप्तं
जगदिदमतिधृष्णक् तृष्णया नष्टचेष्टम् ।
परिलसदनुकम्पा-दृष्टिसम्पात * वृष्ट्या
शिशिरितमकरोद् यो गौरमेघं तमीड़े ॥ उत्पलं ॥१८॥

अद्भुत शक्तिक　　शिक्षित भक्तिक
विद्रुत कर्व्वुर　　कम्रवपुर्धर ।
पद्म–विनिर्जय　　वित्त-पदद्वय ।*
दिव्य–गभस्तिक'　　हृद्‌गतसक्थिक ।

श्लोकान्ते विरुदमाह—गङ्गेति । गङ्गायाः वरतटेषु रङ्गैः कौतुकभरैः अतुलं यथा स्यात्तथा नटतीति । कम्पैः सात्त्विक-विकारजातैः आकुलतर । तथा शम्पानां विद्युतां **रुचि कान्ति धरतीति तादृश ॥१७॥**

(५)

अथोत्पल—कलिकारम्भे श्लोकमाह– खलेति । खलः क्रूरश्चासौ बली प्रधानश्चेति कर्म्मधारयः यः कलिकालः एव स्थूलः प्रचण्डः हेलिः सूर्य्य स्तेन प्रतप्तं अतिधृष्णक् धृष्टतमं तथा तृष्णया स्पृहया नष्टचेष्टं जड़ं इदं जगत् कर्म्म यः परिलसन्ती विराजन्ती या अनुकम्पा दया तस्याः दृष्टि-सम्पातस्य **वृष्ट्या** शिशिरितम् स्निग्धमकरोद्— तं गौरमेघम् इड़े स्तौमि ॥ मेघो यथा सूर्य्यप्रतप्तं जड़ीभूतञ्च जगत् वृष्टिधारया शीतलीकरोति, तद्वदयमपि गौरः कलिकलुषितं भक्ति-शून्यं जगत् अनुग्रह–पूर्व्वकं स्निग्धीकरोतीति ज्ञेयं ॥१८॥ कलिकामाह—अद्भुतेति । अद्भुता विचित्रा शक्ति र्यस्य, शिक्षिता स्वयमाचर्य्य प्रचारिता लोकेभ्यः भक्ति र्येन, "वैराग्य-विद्या निजभक्तियोग शिक्षार्थमेक" इत्युक्तत्वात् । विशेषेण द्रुतं गलितं कर्वुरं स्वर्णं तस्मादपि कम्रं कमनीयं वपु र्धरतीति तादृश । पद्मानां

हुये भी नीतित्यागी हूँ । मेरी प्रीति पीतवर्ण श्रीहरि में हो ॥१६॥ श्लोकान्त में विरुद का पाठ करते हैं—तुम गङ्गा के उत्तम तट रूप रङ्गमञ्च में अतुलनीय नृत्य करते रहते हो, कम्पादि सात्त्विक भावसमूह द्वारा तुम्हारे अङ्ग प्रत्यङ्ग विभूषित हैं, एवं तुमने ही विद्युन्माला की कान्ति को अपहरण किया है ॥१७॥

उत्पल (५)

खल एवं प्रबल कलिकाल रूप प्रचण्ड सूर्य्य ताप से तप्त, धृष्ट एवं दुर्वासना में जड़ीभूत इस जगत् को जो गौरमेघ, दयालु होकर दृष्टि सम्पात रूप वृष्टि द्वारा स्निग्ध किये हैं, उन गौरमेघ की ही मैं वन्दना करता हूँ ॥१८॥ हे गौर ! तुम्हारी शक्ति अति-विचित्र है । तुमने ही मानव को वैराग्य, विद्या एवं निज भक्ति योग शिक्षा प्रदान किया है । तुम्हारे अङ्ग प्रतप्त स्वर्ग से भी अतिकमनीय एवं उज्ज्वल है । तुम्हारे पदयुगल पद्म

*** स्वपरिसदनुकम्पा । * नेत्र सुनिर्णय । * नर्त्तन निर्भय ।**

वत्स-तिरस्कृत रुक्मजपर्व्वत
नव्यतटस्थल भर्म्मसदर्गल
सुष्ठु भुजद्वय' शुभ्ररुचिस्मय *
मर्द्दिमृदुस्मित' पुष्कर-सम्मित-
वक्त्र' परिस्फुर दुत्तमचर्च्चर ।
वर्द्धित सज्जन' तर्ज्जित दुर्ज्जन'
बुद्धि सुखर्व्वित- दिग्जयि गर्वित ॥ देव ॥१९

नामोत्कीर्त्तन-गर्जितै निजजनान् सम्मोदयन् केकिनो
राधाकान्तिघटा—समावृतरुचिः संक्लेश-सन्तापहृत् ।
संसारे मरुनीवृति स्थितमिमं मल्लक्षणं पादपं
श्रीविश्वम्भर-मेघ ! सिञ्च करुणा-पानीय-वृष्टया सकृत् ॥२०॥

त्रिनिर्जयेन वित्तं ख्यातं पद-द्वयं यस्य । दिव्यः गभस्तिः किरणःयस्य । हृद्गतं मनोहरं सक्थि ऊरु र्यस्य । वत्सेन वक्षोदेशेन तिरस्कृतं न्यक्कृतं रुक्मजस्य सुवर्णमयस्य पर्वतस्य नव्यं नवीनं तटस्थलं येन । भर्मणः स्वर्णमयस्य सदर्गलः उत्कृष्टार्गल इव सुष्ठु अत्युत्तमं भुजद्वयं यस्य । शुभ्ररुचेः चन्द्रस्य यो स्मयः हास्यमर्थात् ज्योत्स्ना तं मर्द्दयतीति तथाभूतं मृदुस्मितं यस्य । पुष्करस्य पद्मस्य संमितं समं वक्त्रं वदनं यस्य । परितः स्फुरन् चर्च्चरः केशविन्यासो यस्य । वर्द्धितः प्रशंसितः सज्जनो येन । तर्ज्जितः दुर्जनो येन । बुद्धचा प्रतिभया सुष्ठु खर्व्वितं विनाशितं दिग्जयिनः गर्व्वितं गर्व्वो येन ॥१९॥ कलिकान्ते श्लोकमाह—नामेति । हे श्रीविश्वम्भर-मेघ ! नाम्नां उत्कीर्त्तनमेव गर्जितं तैः निजजनान् भक्तान् केकिनः मयूरान् सम्मोदयन्—तथा राधायाः वृषभानु-नन्दिन्याः पक्षे विद्युतः कान्ति-घटाभिः द्युति—कदम्बैः समावृता रुचिर्यस्य तथाभूतः संक्लेशमेव सन्तापं परतीति तादृशश्च सन् संसारे मरुनीवृति मरुभूमौ स्थितं इमं मल्लक्षणं पादपं वृक्षं सकृत् करुणा एव पानीयवृष्टि स्तया सिञ्च ॥२०॥ श्लोकान्ते विरुदं वचयति—चातुरीति । चातुरीभिः

राशि को जय कर प्रसिद्ध हुये हैं। तुम्हारे अङ्ग से दिव्य लावण्य प्रसृत हो रहा है। तुम्हारे उरुद्वय मनोमद हैं। तुम्हारे वक्षोदेश मानों स्वर्णमय पर्वतके अतिरमणीय तटदेश को पराजित किया है। तुम्हारे भुजयुग, स्वर्णमय अत्युत्कृष्ट अर्गलवत् अतिविस्तृत हैं। मृदु मधुर हास्यसे चन्द्र ज्योत्स्नाराशि भी धिक्कृत होती है, पद्मके तुल्य अतिसुषमाधारी तुम्हारा वदन है। केश कलाप इतस्ततः विक्षिप्त होकर स्फूर्त्ति प्राप्त हो रहे हैं। तुम सज्जन की प्रशसा करते हो, अथच दुर्जन को तिरस्कार करते हो। तुम स्वीय प्रतिमा से दिग्विजयी का गर्व्व को विनष्ट किये हो ॥१९॥ हे विश्वम्भर मेघ ! उच्च नाम सङ्कीर्त्तन रूप गर्ज्जन से तुम्हारे भक्त मयूरवृन्द का आनन्द वर्द्धन पूर्वक राधा भानुनन्दिनी, पक्षमें विद्युत् कान्ति समावृत मूर्त्ति धारण करतः सब के सब क्लेश सन्ताप विनष्ट कर इस मरु भूमि में स्थित मादृश वृक्ष को अन्ततः एक बार भी करुणा वारि वर्षण के द्वारा अभिषिक्त करो ॥२०॥ हे गौर ! तुम, चातुर्य्यमय माधुरी को प्रकाश कर स्वीय गृहिणी विष्णु

चातुरीक्लिप्त माधुरीतृप्त-
गेहिनीचित्त' मेदिनीवित्त'
राधिकाशुद्ध भावभारुद्ध
चारुधीवश्य मामये पश्य ।। धीर ।।२१।।

(६)

झषध्वज–धनुर्द्धियं विदधती बधूना दृशां
द्रढ़िष्ठधृति-दर्दु रीदमनदीर्घ-दर्व्वीकरी ।
भ्रमद्भ्रमर-सञ्चयभ्रमद्भरं भृशं बिभ्रती
भिनत्तु भजतां भयं भवभरं भवद्भ्रूः प्रभो ।। तुरङ्गः ।।२२।।

नन्दित हरि विधि शङ्कर' किङ्कर निकर शुभङ्कर ।
चम्पक कुसुम विनिन्दक मङ्गल तनु रुचि नन्दक ।

क्लिप्ता अन्विता या माधुरी तया तृप्त सन्तोषितं गृहिण्याः स्व-प्रेयस्याः चित्तं येन । मेदिनां पृथिव्यां वित्त ख्यात । राधिकायाः शुद्धः यो भावः भा कान्तिश्च तेन रुद्ध इत्येकपदं, यद्वा तेन रुद्धा अवरुद्धा चारुः धी बुद्धि यस्य, अतो वश्य वशीकृत ! अये गौर ! मां पश्यः ।२१

(६)

अथ तुरङ्ग–कलिकारम्भे श्लोकमाह--झषेति । हे प्रभो ! भवतः भ्रू भजतां भक्तानां भवभयं जन्ममरणोत्थं भयं भिनत्तु नाशयतु । कीदृश्यसौ--बधूनां दृशां नयनानां झषध्वजस्य कामदेवस्य धनुषः धियं विदधती धारयन्ती, द्रढ़िष्ठा दृढ़तमा या धृतिरेव दर्दु री भेकी तस्याः दमन-विषये दीर्घा दर्व्वीकरी सर्पिणी । तथा भृशं भ्रमतां इतस्ततः सञ्चरणशीलानां भ्रमर–समूहानां भ्रम-भरं विभ्रमातिरेकं च विभ्रती धारयन्ती ।।२२।। श्लोकान्ते कलिकां रचयति—नन्दितेति । नन्दिता आनन्दिताः हरिः इन्द्रश्च विधि र्ब्रह्मा च शङ्करश्च येन । किङ्कर-निकराणां भृत्यानां शुभं निखिल-कल्याणं करोतीति तथा । चम्पक–कुसुमानां विशेषण निन्दाकरी च मङ्गला च या तनुः कायः तस्याः रुच्या कान्त्या सर्व्वान् नन्दयतीति

प्रिया देवी के चित्त की प्रसन्नता सम्पादन करते हो, तुम पृथिवी में चिर प्रसिद्ध हो । श्रीराधा की निर्मल भावकान्ति से तुम्हारी सुचारु बुद्धि अवरुद्ध हुई है, अतएव तुम श्रीराधा की वश्यता को अङ्गीकार किये हो, अथवा, श्रीराधा की विशुद्ध भाव कान्ति से तुम अवरुद्ध हो एवं सुचारु बुद्धि सम्पन्न जनगण की वश्यता को अङ्गीकार किये हो । अतएव, मेरे प्रति कृपादृष्टि निक्षेप करो ।।२१।।

तुरङ्ग (६)

हे प्रभो ! बधू वृन्द की दृष्टि में कन्दर्प धनुवत् प्रतीयमाना, दृढ़तमा धृति रूप भेकी को प्रशमित करने में सुदीर्घ सर्पीवत् एवं निरन्तर भ्रमणशील भ्रमर समूह के विभ्रमातिशय धारिणी,तुम्हारे भ्रू युगल,-भजनशील व्यक्ति थे वृन्द का भवभयको विनष्ट करे ।।२२।। तुम, इन्द्र, ब्रह्मा एवं शिव प्रभृति को आनन्द दान करते हो, सेवक वृन्द का अशेष कल्याण विधान करते हो। चम्पक विनिन्दित मङ्गलमय तुम सबको आनन्दित

चन्दन मृगमद रञ्जित । कुङ्कुम घन पृषदङ्कित ।
चन्द्रविजयि मुखमण्डल' पङ्कज सदृश दृगञ्चल ।
दन्तविजित नव कुन्दक' कण्ठतुलितवर कम्बुक ।
सुन्दरतर-भुजदण्डक । सन्तत भवभय खण्डक ।
नन्दिहृदुरसि विलम्बित मञ्जुल मणिसर-मण्डित ।
मञ्जुवसन-युगसंवृत' वञ्जुल सुम-समलङ्कृत ।
सङ्गत करुण पुरन्दर । सम्प्रति मम हृदि सञ्चर ।। देव ।।२३।।

चरित-तर्पित-पङ्कज-शङ्करे, कलिदवार्त्तमनुष्य-शुभङ्करे ।
त्वयि दधत्यमलं कमलं करे मम मनोऽस्तु सदाऽघ-भयङ्करे ।।२४।।

जय चारु धाम जितरूपिकाम ।

तादृश । चन्दनश्च मृगमदश्च ताभ्यां रञ्जित । कुङ्कुमस्य घनैः गाढ़ैः पृषद्भि विन्दुभिः अङ्कित चिह्नित । चन्द्रं विजयते इति तादृशं मुखमण्डलं यस्य । पङ्कजस्य पद्मस्य सदृशः दृशोः नयनयोः अञ्चलः प्रान्तभागो यस्य, दन्तैः विजितानि नवानि कुन्दानि येन । कण्ठेन तुलितः उपमितः वरः कम्बुः शङ्खः यस्य । सुन्दरतरौ भुजदण्डौ यस्य । सन्ततं निरन्तरं भवभयस्य खण्डनकारिन् । नन्दि आनन्दमयं हृत् हृदयं यस्य । उरसि वक्षसि विलम्बितो यो मणिसरो मुक्ताहार स्तेन मण्डित भूषित । मञ्जु मनोज्ञं यत् वसनयोः युगं तेन संवृत संच्छादित । वञ्जुलसुमैः अशोक-कुसुमैः समलङ्कृत । सङ्गता करुणा येषु तेषां पुरन्दर श्रेष्ठ । हे प्रभो ! सम्प्रति मम हृदि सञ्चर विलासं कुरु ।।२३।। कलिकान्ते श्लोकं रचयति-चरितेति । त्वयि मम मनः सदा अस्तु । कीदृशे—चरितेन लीला-विनोदन तर्पितौ सन्तोषितौ पद्मज-शङ्करौ ब्रह्मशिवौ यस्य । कलिरेव दवः अग्निः तेनार्त्त कातरो यो मनुष्यः तस्य शुभङ्करे तथा करे अमलं कमलं दधति एवं अघानां पापानां भयङ्करे पाप-नाशने च ।।२४।। श्लोकान्ते विरुदमाह--जयेति । चारु यत् धाम देहकान्ति स्तेन जितः

करते हो । चन्दन एवं कस्तूरी द्वारा तुम सुरञ्जित हो, एवं कुङ्कुम के घन विन्दु समूह के द्वारा तुम्हारे सर्वाङ्ग चर्चित होते हैं । तुम्हारे मुख मण्डल चन्द्र को भी पराजित करता है । एवं पद्मवत् तुम्हारे नयनाञ्जल है । तुम्हारी दन्त पङ्क्ति नव कुन्द माला को पराजित करता है, तुम्हारे कण्ठ के सहित अत्युत्तम शङ्ख की ही तुलना होती है । तुम्हारे भुज दण्ड भी सुन्दरतर है । तुम सतत भवभय को विनष्ट करते हो । तुम्हारा हृदय सर्वथा आनन्दमय है, तुम्हारे वक्षः स्थल में दोदुल्यमान मनोज्ञ मणिहार शोभित है । सुदृश्य वसन युगल से तुम्हारे श्रीअङ्ग आवृत है । अशोक पुष्प से तुम समलङ्कृत हो, करुणामय जनगण के मध्य में तुम श्रेष्ठ हो । सम्प्रति मेरे हृदय में विचरण करो ।।२३।।

तुम, लीला विनोद के द्वारा ब्रह्माशिवादि को सन्तोषित किये हो । तुम कलि दावानलभीत मनुष्य वृन्दका शुभ कारी हो, तुम्हारे हस्त में विमल कमल विद्यमान है । तुम पापापहारी हो, अतएव हे गौर ! तुम्हारे प्रति मेरा मन सर्वदा आसक्त हो ।।२४।। तुम्हारी सुचारु देह कान्ति को देखकर मूर्त्तिमान् कन्दर्प भी पराजित होता है । तुम्हारे

परिगीत नाम- चरिताभिराम ॥ धीर ॥२५॥

(७)

लक्ष्मीललित-विलोचन-मधुलिग्मोदनमुखामलाम्भोजः।
तापहरः सुखदायी जयति श्रीगौर-कासारः ॥ गुणरतिः ॥२६॥

अवनीतलगत'	जननी-पदनत ।
करुणार्द्र हृदय'	शरणागत भय-
दमने पटुतर'	शमनेक्षणहर ।
दुरितान्वितजन	शुचिता-सुघटन ।
दलिता मलवर	हरिताल-रुचिर ।
मदनार्बुदमद	दलनातुलपद ।
तरुणीमणि निज	गृहिणी प्रियभुज ।

रूपी मनोहरः कामः येन। परिगीते नामचरिते यस्य। अतोऽभिराम परमरमणीय ॥२५॥

(७)

अथ गुणरति—कलिकारम्भे श्लोकमाह--लक्ष्मीति। श्रीगौरः एव कासारः सरोवरः जयति सर्व्वोत्कर्षेण विराजति। लक्ष्म्याः स्वप्रेयस्याः ललिते मनोज्ञे विलोचने नयने एव मधुलिहौ भ्रमरौ तयोः मोदनमानन्ददायकं मुखमेव अमलाम्भोजं विमल-पद्म यस्य। निदाघतापितानां तापोपशमक स्तथा परमानन्ददायकश्चेति ॥२६॥ श्लोकान्ते कलिकां रचयति- अवनीति। अवनीतले पृथिव्यां गत आविर्भूत। जनन्याः शचीदेव्याः पदयोः नत, मातृभक्तचूडामणीत्यर्थः। करुणया आर्द्र संसिक्त हृदयं यस्य। शरणागतानां भयस्य दमने पटुतर। शमनस्य यमस्य ईक्षणं दृष्टिपातमपि हरतीति तादृश। दुरितैः पापैः अन्वितानां कलुषितानां जनानां शुचितायाः विशुद्धतायाः सुष्ठु घटन-कारिन्। दलितञ्च अमलवरञ्च यत् हरितालं तस्य रुचि कान्ति राति गृह्णातीति। मदनार्बुदानां मदस्य रूपगर्व्वस्य दलने नाशने अतुले पदे यस्य। तरुणीमणिः या निजगृहिणी विष्णुप्रिया तस्याः प्रियौ प्रियकरौ भुजौ यस्य। कदनानां पीड़ानां अर्द्दनकरो नाशकरो वदनामृतकरो मुखचन्द्रो यस्य सुमनो-

---

नाम एव चरितादि सर्वत्र गीत होते हैं। हे अभिराम गौर! तुम्हारी जय हो ॥२५॥

गुणतति (७)

श्रीगौराङ्ग रूप सरोवर जय युक्त हो। स्व प्रेयसी लक्ष्मी का मनोज्ञ नयन युगल रूप भ्रमर का आनन्द दायक मुख ही उक्त सरोवर का विमल कमल है। वह निदाघ तापित मानव का तापशमक एवं परमानन्द दानकारी भी है ॥२६॥ तुम धरामें प्रकट हुये हो, अथवा भूमितल में पतित होकर जननी की दण्डवत् प्रणति करते हो। तुम्हारे हृदय करुणा द्वारा संसिक्त है। शरणागत उन का भय नाशन में तुम सुनिपुण हो, तुम यम भय निवारक हो। महापातकीगण को विशुद्ध करने में तुम सक्षम हो। दलित एवं विशुद्ध तर हरिताल का वर्ण को अपहरण किये हो। अर्बुद अर्बुद कन्दर्प का दर्प नाशन में तुम्हारे अतुल चरण युगल ही सुपटु हैं, तुम्हारे भुजद्वय, तरुणिमणि निज गृहिणी

कदनार्द्दनकर वदनामृतकर।
सुमनोजनचय सुमनोऽर्च्चित जय ॥ देव ॥२७

अवतीक्षणलेशमात्रतो भवतीव्रव्यथयार्द्दितान्नरान् ।
युवतीजनचित्तमोहने भवतीह प्रथतां रति र्मम ॥२८॥

सुन्दर' निन्दित कुन्दरद-स्मित
नन्दित सज्जन' सन्दित दुर्जन
सिन्धुर-विक्रम बन्धुर-विभ्रम ॥ धीर ॥२९

(८)

गौड़-पूर्व्वगिरिमूर्द्धिन सूद्यता कुन्दकम्बुसमशुभ्रशोचिषा ।
दीप्यते जगदिदं तमोघ्नता गौर तावकयशः सुधांशुना ॥
मातङ्गखेलितं ॥३०॥

जनचयैः साधुभिः कर्त्तृभिः सुमनोभिः कुसुमैः अर्च्चित । हे तथाविध गौर ! जय सर्व्वोत्कर्षानाविष्कुरु ॥२७॥ कलिकान्ते श्लोकमाह--अवतीति । ईक्षणस्य दर्शनस्य लेशमात्रतः भवस्य जन्ममृत्योः तीव्र-व्यथया अर्द्दितान् नरान् अवति पालयति, तथा युवतिजनानां चित्तानां मोहन-कारिणि इह भवति मम रतिः विपुलीभवतात् ॥२८॥ श्लोकान्ते विरुदं रचयति--सुन्दरेति । निन्दितं कुन्दं येन एवम्भूतो यो रदः दन्तः तस्य स्मितेन हास्य-लेशेन नन्दिताः सज्जनाः साधवो येन सन्दितो दमितो दुर्जनो येन । सिन्धुरः हस्तीव विक्रमो गमनं यस्य बन्धुरो मनोहरो विभ्रमो विलासो यस्य ॥२९॥

(८)

अथ मातङ्गखेलित--कलिकारम्भे श्लोकमाह---गौड़ेति ! हे गौर ! गौड़ एव पूर्व्वगिरिः पूर्व्वाचलः तस्य मूर्द्धिन शिरसि सुष्ठु उद्यता, कुन्दश्च कम्बुः शङ्खश्च तयोः समं शुभ्रं शोचिः किरणः यस्य तादृशेन, तावक यशः एव सुधांशुश्चन्द्रः तेन कर्त्रा तमोघ्नता अन्धकार-नाशकेन स्वरूपेण इदं जगत् दीप्यते उज्ज्वलीक्रियते ॥३०॥ श्लोकान्ते कलिका

विष्णु प्रिया के सुखद हैं। तुम्हारे मुखचन्द्र दर्शनसे सब की पीड़ा विनष्ट होती है। सुबुद्धि जनगण, कुसुमचय द्वारा तुम्हारी अर्च्चना करते हैं। हे गौर ! तुम जयी हो ॥२७॥

तुम्हारे दर्शन लेश मात्र से ही संसार (जन्ममृत्यु) ताप से तीव्र व्यथित मनुष्यगण भी परित्राण को प्राप्त करते हैं। युवति जनका चित्त मोहन तुम हो, एतादृश, तुम्हारे प्रति मेरी सुविपुला रतिका उदय हो,॥२८॥ हे सुन्दर ! कुन्द कुसुमविनिन्दी तुम्हारे दन्त हैं, उस में भी मृदु हास्य है, तद् दर्शन से सज्जन वृन्द परमानन्दित होते हैं। तुम दुर्ज्जन गण को दमन करते हो, तुम्हारा गमन गजेन्द्रवत् एवं तुम्हारे विलास समूह ही परम मनोहर हैं ॥२९॥

मातङ्ग खेलित (८)

हे गौर ! तुम्हारा यशः चन्द्र, गौड़देश रूप पूर्व गिरि शृङ्ग में उदित होकर कुन्द-शङ्ख प्रभृति के तुल्य शुभ्र ज्योत्स्ना विकिरण पूर्वक अन्धकार नाश करतः इस जगत् को

श्रीशचीतुन्द सागरामन्द
भेश' हेत्यन्त मोहितानन्त
यौवता' नङ्ग खेलितासङ्ग ।
नाशितातङ्क लोभिताशङ्क
सेवितानन्द । गीतगोविन्द-
गानसानन्द । मानसाशन्द
पातका सङ्गि शोधने रङ्गि-
दास' पाषण्ड- सेमुषी खण्ड
कारकानङ्क सोमभापङ्क
कीर्त्तिका व्यङ्ग शोभनोत्सङ्ग ।
चारुतामञ्ज मे मनोभ्यञ्च ।। देव ।।३१

भृङ्गाङ्गनारुचि-पतङ्गसुतासुसङ्गद्
गङ्गातरङ्ग-कृतरङ्ग-सदङ्गभङ्ग ।

रचयति---श्रीति-श्रीशचीदेव्याः तुन्दमुदरमेव सागरः तस्य अमन्दभेश पूर्णचन्द्र ! हेत्याः प्रभाया अन्तेन अवधिना मोहितं अनन्तं यौवतं युवति-समूहो येन । अनङ्गस्य खेलितेषु विनोदेषु आसङ्गः आसक्ति र्यस्य । नाशितः आतङ्कः जनानां रुक् तापः शङ्का वा येन । लोभितस्य लोकस्य आशङ्का भीति र्यस्मात्, परम-निर्लोभ इत्यर्थः लोभनाशको वा । सेवितेषु भगवतः भक्तस्य वा सेवासु एव आनन्दः यस्य । गीतगोविन्दस्य गानेषु आनन्देन सह वर्त्तमान । मानसस्य चित्तस्य यत् अशं अकल्याणं तत् द्यति नाशयतीति तथाभूत । पातकेषु आसङ्गिनां आसक्तानां शोधने रङ्गिणो कुतूहला दासा यस्य । पाषण्डाणां सेमुष्या बुद्धयाः खण्डनकारक । अनङ्कः निष्कलङ्कः सोमश्चन्द्र स्तस्य भा कान्तिः सा एव पङ्कः (तत्सदृश इति भावः) कीर्त्तेः कीर्त्तिसकाशात् यस्य । अव्यङ्गः शोभनश्च उत्सङ्गः क्रोड़ो यस्य । चारुतायाः लावण्यस्य मञ्ज आश्रय । हे देव ! त्वं मे मम मनः अभ्यञ्च अभितो सञ्चर ।।३१।। कलिकान्ते श्लोकमाह—भृङ्गेति । हे गौरचन्द्र ! भृङ्गाङ्गना भ्रमरी तस्याः

उज्ज्वल किया है ।।३०।। हे शची जठर रूप सागर का पूर्णचन्द्र ! तुम स्वाङ्ग प्रभाके अतिशय्य से अनन्त युवति समूह को मोहित करते हो, तुम्हारी अनङ्ग क्रीड़ा में ही केवल आसक्ति है । जन निकर के रोग, ताप, शङ्कादि का विनाश तुम ही किये हो । तुम परम निर्लोभ हो । भगवान् अथवा भक्त की सेवा करने में ही तुम परमानन्द अनुभव करते हो । गीत गोविन्द गान से तुम परम सुखी होते हो । तुम सब के मानसिक आधिको विनष्ट करते हो । तुम्हारे सेवक वृन्द पातकि जन शोधन करने में ही व्यग्र चित्त हैं । तुम पाषण्ड वृन्द का दुर्बुद्धि नाशक हो, तुम्हारी कीर्त्ति के सकाश में अकलङ्क पूर्ण चन्द्र की ज्योत्स्ना भी मलिनीकृत होती है । तुम्हारा अङ्क अति मनोरम है, तुम सकल सौन्दर्य्य का निधान हो, तुम मेरे मनोमध्य में सञ्चरण करो ।।३१।।

हे गौरचन्द्र ! भ्रमरी माला के समान कान्ति विशिष्टा यमुना के सहित सुमिलिता

आनन्दित द्विजपुरन्दर मन्दमन्दं
मां गौरचन्द्र ननु नन्दय शं ददानः ॥३२
पण्डितगण वन्द्यचरण ।
भक्तिनिपुण वर्णित गुण ॥ देव ॥३३

(६)

ऊर्ध्वे बाहुयुगे सुचारुमुरलीं मध्येऽब्जशङ्खौ तथा
ऽधस्थे चक्रगदे दधत् प्रकटयन्नत्यन्तचित्रं वपुः ।
नित्यानन्दमनन्दयन्निजमहैश्वर्य्येक्षणायोत्सुकं
सोऽयं मे दयतामगम्यचरितो गौरो हरिः षड्भुजः ॥

तिलकं ॥३४

धरणि विबुधकुल पङ्कज दिनकर ।
निजजन कुमुद शुभङ्कर शशधर ।

रुचिः कान्तिरिव रुचिर्यस्याः सा चासौ पतङ्गसुता यमुना चेति तया सुष्ठ सङ्गच्छन्ती या गङ्गा तस्याः तरङ्गैः तरङ्गेषु वा कृतो रङ्गो येन । सतां परम-शोभनानां अङ्गानां भङ्गो यस्य । आनन्दितो द्विजपुरन्दरो जगन्नाथमिश्रो येन । तथा शं मङ्गल ददानः दायकः त्वं मन्दमन्दं महामूर्खं महादुर्भाग्यं वा मां नन्दय । नन्विति --सम्बोधने ॥३२॥ श्लोकान्ते विरुदं रचयति--पण्डितेति । पण्डितगणैः सार्वभौम-प्रबोधानन्द-प्रभृतिभिः वन्द्ये चरणे यस्य । भक्तिनिपुणैः श्रीरूप-सनातनादिभिरपि वर्णिता गुणा यस्य ॥३३॥

(६)

अथ **तिलक**--कलिकारम्भे श्लोकमाह—ऊर्द्ध्वे इति । स्पष्टार्थोऽयं ॥ ३४॥

श्लोकान्त कलिकामाह– धरणीति । धरणिविबुधा ब्राह्मणाः तेषां कुलानि एव पङ्कजानि पद्मानि तेषां दिनकर इव । निजजना भक्ता एव कुमुदानि तेषां शुभङ्करः

गङ्गा की तरङ्ग माला में तुमने विविध रङ्ग विस्तार किया है । तुम्हारे परमशोभन अङ्ग प्रत्यङ्ग में कितनी तरङ्ग प्रकट होती रहती हैं ? द्विजश्रेष्ठ जगन्नाथ मिश्र तुम से प्रचुर तर आनन्द प्राप्त किये हैं । तुम परम कल्याण दान कारी हो, अतएव प्रार्थना यह है कि– महा दुर्भाग्य को अथवा महामूर्ख को आनन्द दान करो । ३२॥ सार्वभौम, प्रबोधानन्द प्रभृति पण्डित गण तुम्हारे चरण युगल की वन्दना करते हैं । श्रीरूपसनातनादि भक्ति निपुण वृन्द भी तुम्हारी गुणावली का कीर्त्तन करते हैं ॥३३॥

तिलक (६)

जिन्होंने स्वीय महैश्वर्य्य दर्शनोत्सुक श्रीनित्यानन्द को षड़्भुज मूर्त्ति प्रदर्शन कर आनन्दित किये थे । जिनके ऊर्द्ध्व बाहुद्वय में मोहन मुरली, मध्य भुजद्वय में पद्म एवं शङ्ख, एवं निम्नस्थ भुजद्वय में चक्र एवं गदा धृत है, अत्यद्भुत मूर्त्ति प्रकटन जिन्होंने किया है, उन अगम्य चरित्र षड़्भुज श्रीगौर हरि ही मुझे दया करें ॥३४॥ हे गौर ! तुम ब्राह्मण कुल पङ्कज के दिनमणि स्वरूप हो । भक्त कुमुद के कल्याणमय चन्द्र हो ।

कलिमद कलकरि दण्डन हरिवर।
सुकृति दवथुदव खण्डन जलधर।
चरणयुगल रुचिनिन्दित सरसिज।
निरुपम करिकर वन्दित वरभुज।
सितरुचि तनुपट सम्वृत रुचिभर-
परिविलसदुरसि सम्भृत-मणिसर।
मुखरुचिजित शरदिन्दुनलिनभग।
रस विगलदुदक बिन्दु नयन युग।
मसृण कुटिलतर कुन्तल शशि सम-
विसृमर किरणकदन्त कृपय मम॥ देव॥ ३५

गौरहरे तव करुणामृत-वर्षणतो महीतले सकले।
भक्तिलता प्रसृमरतां प्राप्ता नानाफलं फलति॥३६

शङ्कर वन्दित पण्डित नन्दित

शशधर श्चन्द्र इव। कलिरेव मदकल: महामत्त: करी हस्ती तस्य दण्डने दमनविषये हरिवर सिंहश्रेष्ठ। सुकृतीनां दवथु: उपताप एव दव: अग्नि: तस्य खण्डने जलधर मेघ। चरण-युगलस्। रुच्या कान्त्या निन्दितं सरसिजं पद्मं यस्य। निरुपमौ च करिकरेण हस्तिशुण्डेन वन्दितौ च वरौ भुजौ यस्य। सित-रुचि: श्वेतवर्णश्च तनु: सूक्ष्मश्च य: पट: वस्त्रं तेन सं सम्यक् वृत आच्छादित। रुचिभरेण कान्त्यतिशयेन परिविलसति अतिसुन्दरे उरसि वक्षोदेशे सम्भृत: विधृत: मणिसर: मुक्ताहारो येन। मुखस्य रुच्या कान्त्या जितं शरदिन्दो: शारदीयचन्द्रस्य च नलिनस्य पद्मस्य च भगं सौन्दर्यं यस्य। रसेन भक्ति-भरेण विगलन्त: उदकविन्दव अश्रुजलानि यस्मिन् एवम्भूतं नयनयुगं यस्य। मसृणाश्च कुटिलतराश्च कुन्तला: केशा यस्य। शशिसमा श्चन्द्रतुल्याश्च बिसृमरा इतस्तत: प्रसृता: किरणा: येषां तथाभूताश्च दन्ता यस्य। मम मां कृपय॥३५॥ कलिकान्ते श्लोकमाह—गौरेति। प्रसृमरतां विस्तृति॥३६॥ श्लोकान्ते विरुदमाह—शङ्करेति। शङ्करेण शिवेन वन्दित। पण्डितै:

कलि कालरूप महामत्त हस्ती के दक्ष में तुम दमन कारी महासिंह हो। सुकृति जनगण के परिताप दावानल विनाशन निबन्धन तुम जलधर हो, तुम्हारे चरण युगल की शोभा पद्म को विडम्वित करती है। निरुपम हस्ती का शुण्ड भी तुम्हारे अनुपम भुज युगल की वन्दना करता है। श्वेतवर्ण सूक्ष्म वस्त्र द्वारा तुम्हारे अङ्ग समावृतहै। तुम्हारे परमसुषमा मण्डित वक्षोदेश में मुक्ताहार दोदुल्यमान है। तुम्मारी मुख कान्ति से शारदीय चन्द्रमा एव पद्म की सुषमा भी लज्जित होती है। तुम्हरे नयन युगल युगलकी अविरल धारा से भक्ति रसविन्दु—अश्रुधारा क्षरित हुई है। तुम्हारे केश कलाप मसृण एवं कुटिल तर हैं, चन्द्र तुल्य शुभ्रदन्त श्रेणी से किरण राजि प्रसृत हो रही है। हैं देव! मुझ को कृपा करो॥३५॥ हे गौर हरि! तुम्हारे करुणामृत वर्षा को प्राप्त कर समग्र मही मण्डल में लता विस्तारित होकर विविध प्रेम फल प्रसव कर रही है॥३६॥ तुम शिव का भी वन्दनीय

चङ्गिम रञ्जित मण्डन मण्डित ॥ धीर ॥३७

(१०)

चण्डवृत्तस्य विशिखे "पङ्केरुह" कलिका

लक्ष्म्यालङ्कृतमङ्गं कलयन् शङ्खं करे तथा कमलं।
द्विजपुङ्गव सङ्गरतो गौराङ्ग त्वं विभासि शार्ङ्गीव ॥

पङ्केरुहं ॥३८

जय कलिपङ्क क्षपण सुटङ्क-
प्रभ' गुणसङ्ग' द्विपकर-जङ्घ'
प्रविलसदङ्ग द्युतिजित चङ्ग
स्फुटशण रङ्ग' प्रबल भुजङ्ग

नन्दित आनन्दित ! चङ्गिम्ना सौन्दर्य्येण रञ्जित प्रीतिपद । मण्डनैः अलङ्कारैः मण्डित ।।३७।।

(१०)

अथ चण्डवृत्त-महाकलिकाया द्वितीय-भेदे विशिखे पङ्केरुह– कलिकारम्भे श्लोकमाह लक्ष्म्येति । हे गौराङ्ग ! त्वं शार्ङ्गी विष्णुरिव विभासि । तत्साधर्म्यमाह---लक्ष्म्या लक्ष्मी प्रियया अलङ्कृतमङ्गं,तथा करेशङ्खं कमलञ्च चिह्नरूपं कलयन् बिभ्रत् एवं द्विजपुङ्गवानां ब्राह्मण-वर्य्याणां [पक्षे— गरुड़स्य] सङ्गे रतश्च ।।३८।। श्लोकान्ते कलिकामाह– जयेति । कलिकलुषाणां क्षपणे नाशने सुष्ठु टङ्कः पाषाणदारणः तस्य प्रभ तत्सदृश । गुणानां सङ्गः समूहो यत्र । द्विपस्य हस्तिनः कर इव जङ्घा यस्य । प्रकृष्टरूपेण विलसतामङ्गानां द्युत्या कान्त्या जितः चङ्गस्य मनोहरस्य स्फुटस्य प्रस्फुटितस्य च शणपुष्पस्य रङ्गः रागो येन । प्रबलभुजङ्ग- वदाचरन्तौ भुजौ यस्य । पतङ्गस्य सूर्य्यस्य प्रभा इव प्रभा यस्य । निजसङ्गेन प्रकृष्टरूपेण पवितो पवित्रीकृतो वङ्गद्विजः तपनमिश्रः

हो, पण्डित गण तुम्हें आनन्दित करते है, महासौन्दर्य्य द्वारा तुम सब को प्रीति दान करते हो, तुमि नानाविध भूषण-भावभूषण-चन्दनाङ्गद प्रभृति द्वारा सुसज्जित हो ।३७।

पङ्केरुह (१०)

श्रीलक्ष्मी के सहित जिस प्रकार श्रीविष्णु अवस्थित होते हैं, उनके हस्त में कमल एवं शङ्ख शोभित होते हैं, एवं गरुड़ वाहन हैं । उस प्रकार श्रीगौराङ्ग भी लक्ष्मी प्रिया कर्त्तृक विभूषिताङ्ग हैं । उनके हस्त में चिह्न रूप में शङ्ख कमल विद्यमान हैं । एवं ब्राह्मण श्रेष्ठ वृन्द के सहित ही उनका नित्य सङ्ग है । हे गौराङ्ग । तुम विष्णु के समान प्रतीयमान हो रहे हो ।।३८।।

हे गौर ! तुम्हारी जय हो, तुम कलिकलुष नाशन में अत्युत्तम पाषाण दारण टङ्क नामक अस्त्र सदृश हो । तुम निखिल कल्याण गुणमय हो । तुम्हारी जङ्घा हस्ति शुण्ड के तुल्य हैं, तुम्हारी परम विलासी अङ्ग प्रत्यङ्ग की कान्ति च्छटा से मनोहर एवं प्रस्फुट शण पुष्प का वर्ण पराजित हुआ है । तुम्हारे भुजद्वय प्रबलतर भुजङ्ग के तुल्य

दुभुजक' पतङ्ग प्रभ' निज सङ्ग
प्रपवितवङ्ग द्विज' परिरिङ्गत्
सुरसरिदिङ्ग न्मधुरतरङ्ग
प्रथित सुतुङ्ग द्रवभवभङ्ग
क्षमहरि सङ्गी र्त्तन गत' पङ्क्ती-
कृत जल' गङ्गा तट वर रङ्गा-
हित सुख देव । वीर ॥३९

इङ्गत्तुङ्ग-तरङ्गसङ्गमन सद्गङ्गातट-प्राङ्गणे
रिङ्गन् सङ्गिगणै रनङ्ग-विजयं कुर्व्वन् निजाङ्ग-श्रिया ।
सङ्गीतेन सुराङ्गनासु जनयन् स्विन्नाङ्गता-सङ्गतिं
गौराङ्गो नटपुङ्गवो मम मनोरङ्गस्थलङ्गाहतां ॥ ४०

चरित सुखित विधि शङ्कर हलधर ।

येन । परितो रिङ्गन्ती गच्छन्ती या सुरसरिद् गङ्गा तस्याः ईङ्गतः उत्थितवन्तो ये मधुराः तरङ्गाः येषु प्रथिता विख्याता सुतुङ्गाः अत्युत्कृष्टाः द्रवाः परीहासाः यस्य । भवभङ्गे संसार-ध्वंशे क्षमं योग्यं यत् हरि-संकीर्त्तनं तस्मिन् गतः, अतः पङ्क्तीकृतं विहार-परम्परया कर्द्दमीकृतं कलं येन गङ्गायाः तट-वरेषु रङ्गैः कौतुकैः आहितं जन-गणेषु दापितं सुखं येन । हे तादृश देव ! त्वं जय । सर्वोत्कर्षमाविष्कृत्य विलासादिकं सम्पादय । ॥३९॥ कलिकान्ते श्लोकमाह—इङ्गदिति । इङ्गन्तः प्रोद्गच्छन्तः तुङ्गाः अत्युच्चा ये तरङ्गाः तेषां सङ्गमनं बाहुल्यं यत्र एवम्भूता या सती उत्कृष्टा गङ्गा तस्याः तटप्राङ्गणे तटभुवि सङ्गिगणैः स-पार्षदैः रिङ्गन् गच्छन्—निजाङ्गानां श्रिया लावण्येन अनङ्गस्य विजयं पराजयं कुर्व्वन् तथा सङ्गीतेन सुराङ्गनासु देवीसु स्विन्नाङ्गतायाः स्वेदपूरितदेहत्तायाः सङ्गतिं जनयन् नटपुङ्गवः नटचूड़ामणिः गौराङ्गः मम मन एव रङ्गस्थलं गाहतां प्रविशतु ॥४०॥ श्लोकान्ते विरुदं रचयति—चरितेति । चरितेन आचरणेन सुखिताः विधि-

---

शिव-हलधरा येन । विमलं कनकमयञ्च यत् पङ्कजं पद्मं तस्य रुचिभरः कान्त्यतिशय

आचरण शील हैं । तुम्हारी प्रभा सूर्य्य सदृश है । तुमने निज सङ्ग दान द्वारा वङ्गदेशी विप्र तपन मिश्र को प्रकृष्ट रूप से पवित्र किया है । नवद्वीप प्रान्त वाहिनी गङ्गा के मधुरतरङ्ग समूह में अत्युत्कृष्ट परि हासानि रङ्ग विस्तार कर तुम प्रसिद्ध हुए हो संसार नाशन हरि संकीर्त्तन में उन्मत्त होकर विहार करते करते गङ्गा जल को कर्द्दमाक्त किये हो । उसके तीर में बहुविध रङ्ग विस्तार करतः जन गण का प्रचुरतर सुख विधान किये हो । सर्वोत्कर्ष – आविष्कार पूर्ण विलासादि सम्पादन तुम करो ॥३९॥ उत्ताल तरङ्गमाला समाकुल गङ्गातट में सपार्षद गमन करतः निज अत्यङ्ग प्रङ्ग के सौन्दर्य्य से अनङ्ग को मोहित करके एवं सङ्गीत के द्वारा देवी वृन्द के स्वेद बाहुल्य संघटन कर, नट शिरोमणि गौराङ्ग, मेरा मनरूप रङ्ग स्थल में प्रवेश करें ॥४०॥

तुम्हारे आचरण से अथवा लीला से ब्रह्मा शिव एवं बलदेव प्रभृति आनन्दित हुये

विमल कनकमय पङ्कज रुचिभर ।
दशनवसनजित रङ्गण कुसुमक ।
चलन तुलित सुमतङ्गज गमनक ॥ धीर॥ ४१

(११)

नरलीलाहित-दुष्टवञ्चने कृत-राधाप्रणयप्रपञ्चने ।
नृहरौ भाजितशुद्धकाञ्चने रमतां मे मतिरुत्तमाञ्चने ॥
सितकञ्जं ॥ ४२

जय समुदञ्चत्	परिमल चञ्चन्
मधुप करञ्ज	द्रुमसुमपुञ्ज
स्रग' धिकमञ्जव	म्बुज नव किञ्ज-
ल्करुचिर' गञ्ज	ज्वलदघखञ्ज-

इव रुचिभरो यस्य । दशन-वसनेन ओष्ठेन जितं रङ्गण-कुसुमं येन । चलनेन गमनभङ्गचा तुलितं सुमत्तङ्गजस्य मत्तमातङ्गस्य गमनं येन ॥४१॥

(११)

अथ **सितकञ्ज**--कलिकारम्भे श्लोकमाह—नरेति । नरलीलया आहितं कारितं दुष्टानां वञ्चनं येन तस्मिन्—कृतं राधायाः प्रणयस्य प्रपञ्चनं विस्तारो येन । भया कान्त्या जितं शुद्धं काञ्चनं येन । उत्तममञ्चनं गमनं यस्य तस्मिन् च नृहरौ गौराङ्गे मम मतिः रमतां उदयतां ॥४२॥ श्लोकान्ते कलिकामाह—जयेति । सम्यक् उदञ्चता उद्गच्छता परिमलेन सुगन्धेन चञ्चन्तः चञ्चलायमानाः मधुपाः भ्रमरा यत्र एतादृशां करञ्जद्रुम-सुमनसां करञ्जपुष्पाणां पुञ्जैः समूहैः स्रक् माल्यं यस्य । अधिकं यथा स्यात्तथा मञ्जु मनोज्ञं यदम्बुजं पद्मं तस्य नव-किञ्जल्केभ्यः नूतनकेशरेभ्यः अपि रुचिर मनोमद । गञ्जेन स्वनिन्दया ज्वलता अघेन पापेन खञ्जस्य द्विजस्य चापलगोपालस्य गदः

हैं । विमल स्वर्ण पद्मवत् तुम्हारी कान्ति धारा है । तुम्हारे ओष्ठ रङ्गण कुसुम को पराजित किया है । मत्त मातङ्ग की गमन भङ्गी भी तुम्हारी चलन रीति से धिक्कृत हुई है ॥४१॥

सित कञ्ज (११)

जिन्होंने नर लीला द्वारा दुष्टगण को वञ्चना की है, जिन्होंने श्रीराधा का प्रणय माधुर्य्य विस्तारित किया है, जिनकी कान्ति से शुद्ध काञ्चन भी पराजित हुआ है, जिन की गमन भङ्गी,—माधुर्य्यातिशय व्यञ्जक है, उन नरहरि श्रीगौराङ्ग में ही मेरी मति हो ॥४२॥ हे गौराङ्ग ! तुम्हारी जय हो । तुम्हारे गल देशस्थ करञ्ज कुसुम की मालासे उत्थित मनोहर सुगन्ध से समाकृष्ट भ्रमरावलि इतस्वतः चञ्चल हो रही है, समधिक मनोज्ञ पद्म के नव किञ्जल्क से भी सातिशय रुचिर तुम हो । तुम्हारे भक्त की निन्दा सञ्जात जाज्वल्यमान पाप से खञ्जीभूत ब्राह्मण चापाल गोपाल को कुष्ठरोग से सम्यक् प्रकार निरामय प्रदान किये हो । तुम्हारी नासिका शुकचञ्चु से भी अधिक

द्विज-गद-सञ्चू   र्णक' शुकचञ्चू
उमनस' चिञ्चा   तरुतल–मञ्चा-
सन' शिखिपिञ्छा   सितकच-सञ्छा-
दित-मुखकञ्जो   ज्ज्वल रससङ्गो-
षक' वर मञ्जी   र-करवसञ्जी-
वितजनगुञ्जा   घनतटकुञ्जा
हित रस देव ।। वीर ।। ४३

काञ्चनारकृत-कर्णभूषणं काञ्चनातिजयि- कान्तिभृत्तव ।
काञ्चनातिसुषमां दधद्वपुः काञ्च नाम न विमोहयेद्वधू ।।४४।।

कलिकुभुजङ्गमजङ्गमविषहर'
मुखजित पङ्कज' पङ्कज पदकर

कुष्ठरोग स्तस्य सञ्चुर्णक विनाशक । शुकस्य चञ्च्वा अपि उत्तमा नसा नासिका यस्य । शिखिपिञ्छेभ्यो: मयूरपुच्छेभ्योऽपि असिता: कृष्णवर्णा: ये कचा केशाः तैः संछादितं मुखमेव कञ्जं पद्म यस्य । उज्ज्वलरसस्य शृङ्गारस्य सम्यक् जोषक प्रीतिपूर्व्वक सेबा-कारिन् । वरे ये मञ्जीरके नूपुरे तयो: रवेण सञ्जीविता: जना. येन । गुञ्जाभि: घनं निविड़ं यत् तट गङ्गाया एव प्रकरणबलात्, तस्मिन् यानि कुञ्जानि तेषु आहित: संस्थापित: रसो येन । हे एतादृश देव गौरसुन्दर त्वं जय ।।४३।। कलिकान्ते श्लोकमाह— काञ्चनेति । काञ्चनारै: पुष्प-विशेषै: कृतं कर्णयो: भूषणं यस्य तत्, काञ्चनं सुवर्ण अति अतिशयेन जयतीति तादृशीं कान्तिं बिभर्त्तीति तथा काञ्चनां अनिर्वचनीयां सुषमां लावण्या-दिकं दधत् तव वपु काञ्च नाम बधू न विमोहयेत् ? अपितु सर्व्वा एव युवत्य: विमुह्यन्त्येव ।।४४।। श्लोकान्ते विरुदामाह— कलीति । कलिरेव कुत्सित् भुजङ्गम: सर्प: तस्य पक्षे जङ्गम: गतिशीलो विषहर विषवैद्य । मुखेन जितं पङ्कजं येन । पङ्कजमिव पदे करौ च यस्य । सुष्ठु रमित: आनन्दितो हंसक: परम-हंसो येन । सुकलितेति पाठे सुष्ठु

सुन्दर है । तिन्तिड़ी (इमली) वृक्षमूल में खट्टा के ऊपर में तुम उपवेशन किये हो । शिखिपिञ्छ से भी समधिक कृष्ण वर्ण केश दाम से तुम्हारे मुखपद्म आवृत है । तुमने ही उज्ज्वल रस की सेवा प्रीति पूर्वक सम्यक् रूप से की है, अत्युत्तम नूपुर रव से तुम जनगण को सञ्जीवित किये हो, गुञ्जावन में एवं निविड़ गङ्गा तटके कुञ्ज समूह में तुमने बहुशः रस वृष्टि की है ।।४३।। हे गौर हरि ! तुमने काञ्चन पुष्प से स्वीय कर्ण भूषण की रचना की है । काञ्चन कान्ति को पराजय कारिणी तुम्हारी अङ्ग कान्ति है, अनिर्वचनीय शोभाधारो तुम्हारे समस्त अङ्ग है । इस से जगत् में कौन बधू विमोहित नहीं होती हैं ? अर्थात् इस प्रकार सुन्दर वपु दर्शन से सकल युवती मोहित हो जायेंगी । ।।४४।। तुम कलि कुभुजङ्ग के गति शील विषवैद्य हो, तुम्हारा वदन पद्म को पराजित किया है, पद्म के समान ही तुम्सारे चरण एवं कर युगल हैं, परम हंस वृन्द को भी सुन्दर आनन्द प्रदान करने में तुम सक्षम हो। पाठान्तर में अर्थात् "सु कलित" के स्थान में

सुरमित-हंसक' हंसक-सुगमन ।
मधुर रसङ्गत सङ्गत-निजजन ॥ धीर ॥ ४५

(१२)

दण्डित-दिग्जयि-पण्डित' खण्डित-पुण्ड्रप्रचण्ड-यमदण्ड ।
ताण्डव-मण्डित गङ्गातट मण्डन' खण्डयाघं मे ॥ पाण्डुत्पलं ॥४६

जय शशि तुण्ड'	प्रियजन चण्ड-
द्युति सुत-दण्ड-	क्लमभय खण्ड'
स्फुटतर झिण्टी	द्युतिभर' सण्टी
कनरुचि कुण्ठी	कृत गज' कण्ठी-
रव सुपिचिण्डा'	तिशय वितण्डा
क्षितिकर पण्डा	जित बुधशण्डा

कलितौ परिहितौ हंसकौ पादकटकौ येन । हंस इव सुष्ठु गमनं यस्य । मधुर-रसं श्रृङ्गारं गत प्रविष्टचित्त । सङ्गता मिलिता निजजना भक्ताः येन ॥४५॥

(१२)

अथ **पाण्डुत्पल**-कलिकारम्भे श्लोकमाह— दण्डितेति । दण्डितः दमितः दिग्जयी चासौ पण्डितश्चेति येन । खण्डितं विनाशितं पुण्ड्राणां नवद्वीप-निकटस्थ-म्लेच्छविशेषाणां प्रचण्डं घोर यमदण्डं येन । ताण्डवेन नृत्येन मण्डितं यत् गङ्गातटं तस्यापि मण्डन भूषण । हे तादृश गौर ! मम अघं पापं भजन-विमुखतामिति यावत् खण्डय विनाशय ॥४६॥ श्लोकान्ते कलिकां रचयति– शशीति । हे शशितुण्ड ! चन्द्रवदन ! त्वं जय । प्रियजनानां चण्डद्युति-सुतस्य यमस्य दण्ड-क्लमस्य भयं खण्डयतीति सेवकानां यमदण्डजन्य-ग्लानिभय-निवर्त्तकेत्यर्थः । स्फुटतरा विकशिता या झिण्टी पीत- झिण्टी सेव द्युतिभरः कान्ति-प्राचुर्य्यं यस्य । सण्टीकनस्य सुन्दरगमनस्य या रुचिः शोभा तया कुण्ठीकृतो पराजितो गजो येन । कण्ठीरवः सिंह इव सुन्दरः पिचिण्डः उदरं यस्य । अतिशय-वितण्डायाः क्षितिकर्य्या नाश

सुरमित पाठ हैं, उस से उक्तार्थ हुआ है । 'सुकलित' पाठ से चरण में सुन्दर नूपुर धारण अर्थ होगा । तुम हंसवत् सुन्दर रूप से गमन करने में समर्थ हो । मधुर रसास्वादन में तुम निरत हो, एवं भक्त वृन्द के सहित सम्मिलित होकर रहते हो ॥४५॥

पाण्डूत्पल (१२)

तुमने दिग् विजयी पण्डित को दण्डित किया है । नवद्वीप के प्रान्तवर्त्ती पुण्ड्रनाम म्लेच्छ गण को उद्धार कर घोर यमदण्ड से उन सब की रक्षा तुमने की है । ताण्डव नृत्य से गङ्गा तट की शोभा समृद्धि वर्द्धित करके उसके अलङ्कार सदृश तुम हुये हो । हे गौर ! तुम मेरा अघ-भजन वैमुख्य विनष्ट करो ॥४६॥ हे गौरविधो ! तुम्हारी जय हो । तुम्हारा वदन है चन्द्रवत् सु दृश्य है । तुम प्रिय जनगण का यमदण्ड जनित ग्लानि भय निवर्त्तन करते हो, विकसित पीत झिण्टी के तुल्य तुम्हारी कान्ति राशि है । तुम्हारा सुन्दर गमन शोभा हस्ती को पराजित करती है । सिंहवत् तुम्हारा जठर, अति क्षीण

पर गृहशण्ढा दण्नुतदण्डी
रकपट' खण्डी- कृतकलिभण्डा
मलशशिखण्डा लिकतट देव ॥ वीर ॥ ४७

दोर्दण्डद्वय-चण्ड-चालन-भरात् पापाण्डजान् डाययन्
पाषण्डावलिमुण्डमण्डलमतीवाखण्डयन् ङ्घ्रिणा ।
काण्डे दण्डमपि प्रमण्डयतु मे मार्त्तण्ड-कोटिच्छवि-
गौर स्ताण्डवपण्डितोऽलिक-लसत्पुण्ड्रो मनो-मण्डपं ॥४८

चण्डाल पाषण्ड दु श्चेष्टताखण्ड ।
कम्बूल्लसत्कण्ठे' भक्त्यर्पणाकुण्ठ ॥ धीर ॥ ४९

(१३)

कर्य्या पण्डया वेदोज्ज्वलया बुद्धया जिता बुधशण्ढाः प्राज्ञश्रेष्ठा येन । अपर-गृहेषु परस्त्रीषु शण्ढ उदासीन । आदरेण नुतं वन्दितं दण्डिनः सन्न्यासिनः ईश्वरस्य पदं येन । चण्डीशेन महादेवेन अद्वैतेन वा महिन पूजित । हिण्डीरः फेनः इव पटः वस्त्रं यस्य । खण्डीकृतः विनाशितः कलिरेव भण्डः पाषण्डो येन । अमलं शशिखण्डमिव अलिक-तटं ललाटदेशः यस्य । हे देवः । त्वं जय ॥४७॥ कलिकान्ते श्लोकमाह – दोर्दण्डेति । दोर्दण्ड-द्वयस्य बाहुयुगस्य चण्डं अतिशयं यथा स्यात्तथा चालनभरात् सञ्चालनातिरेकेण पाप-पक्षिणः उड्डाययन् – तथा नृत्यकाले अङ्घ्रिणा पादचालनेन पाषण्ड-समूहानां मुण्डमण्डलं मस्तकसमूहम् अतीव आखण्डयन् संचूर्णयन् मार्त्तण्डानां सूर्य्याणां कोटीनां छविः कान्तिरिव छवि र्यस्य सः – अलिके ललाटे लसन् शोभमानः पुण्ड्रः तिलकः यस्य । तथा ताण्डव-पण्डितो गौरः काण्डे अवसर-क्रमेण दण्डमपि क्षणकालं व्याप्य मे मनोमण्डपं प्रकृष्टरूपेण मण्डयतु भूषयतु ॥४८॥ श्लोकान्ते विरुदं रचयति — चण्डालेति । चाण्डालानां पाषण्डानाञ्च दुश्चेष्टतायाः भक्तिविमुखत्वस्य खण्डक । कम्बु शङ्ख इव उल्लसन् शोभमानः कण्ठः यस्य । भक्तेः अर्पणे दान-विषये अकुण्ठ देश-काल-पात्रादि-विचारशून्य ॥४९॥

(१३)

है । वेदोज्ज्वल बुद्धि के बल से तुमने प्राज्ञ शिरोमणि को परास्त किया है । तुमने सुमहान् आदर पूर्वक सन्न्यासी ईश्वर पुरी के चरण वन्दन किया है । महादेव अद्वैत ने भी तुम्हारी पूजा की है । फेनवत् तुम्हारा वसन शुभ्र है । कलिकाल रूप पाषण्ड को तुमने विनष्ट किया है । विमल चन्द्रार्द्धवत् प्रशस्त ललाट विशिष्ट तम हो ॥४७॥ जो सङ्कीर्त्तनावसर में बाहु युगल के अतिशय सञ्चालन द्वारा पाप पक्षी गण को विताड़ित कर रहे हैं । ताण्डव नृत्य में पद चालन द्वारा जो पाषण्डसमूह के मुण्ड को मानो संचूर्ण कर रहे हैं—जिनकी मूर्त्ति कोटि सूर्य्य विजयी कान्ति विशिष्ट है, जिन के ललाट फलक में ऊर्द्ध्व पुण्ड्र हरिमन्दिर तिलक शोभमान है – वह ताण्डव पण्डित गौर, यथावसर क्षण काल के निमित्त भी मेरा मनोमन्दिर को सुशोभित करें । यही प्रार्थना ॥४८॥

तुमने चण्डाल एवं पाषण्ड गण की दुश्चेष्टा भक्ति वैमुख्य को विनष्ट किया है । शङ्ख वत् शोभमान तुम्हारा कण्ठदेश है । भक्ति प्रदान प्रसङ्ग में तुम देश काल पात्रादि विचार शून्य हो ॥४९॥

बन्धिवन्दीवर-नन्दी मायाबन्धान्धकार-सन्दमनः ।
मिश्रपुरन्दर-नन्दन-चन्द्र श्चन्दयति सन्ततं विश्वम् ।। इन्दीवरं ।।५०

जय महदन्तः स्फुरति सदन्त
व्रतकलिहन्तः सकलनियन्त
र्व्रजरससन्तर्पितजन' दन्त-
द्युतिजितकुन्द' स्फुरदरविन्द
प्रभ-मुख' सन्ता यित सदनन्ता
मरसुख' चिन्ता मय दव सन्ता
पितजन-कन्दा' ब्जज-मुखवृन्दा-
रकनुत' भन्दा त्मकगुणवृन्दा
तुलदृढ़सन्धा मलशुभगन्धा-

अथेन्दीवर-कलिकारम्भे श्लोकमाह– बन्धवीति । बन्धुः एव इन्दीवरं पद्म तस्य नन्दी आनन्दकरः, मायाबन्ध एवान्धकारः तस्य सन्दमनः निराकृत तथा मिश्र-पुरन्दरस्य जगन्नाथमिश्रस्य नन्दनः पुत्र एव चन्द्रः सततं सर्व्वदा विश्वं चन्दयति आनन्दयति । ५०।।

श्लोकान्ते कलिकां रचयति– जयेति । महतां भक्तानां अन्त अन्तकरणे स्फुरणशील ! जय सर्वोत्कर्षैः विराज । सतां अन्तो नाशनमेव व्रतं यस्य तस्य कलेर्हन्तः दोष-निवर्त्तकेत्यर्थः । सकलानां स्थावरजङ्गमानां नियन्तः नियमव । व्रजरसैः सन्तर्पिताः जना येन । दन्तद्युत्या दशन-कान्त्या जित कुन्दं येन । स्फुरतः अरविन्दस्य पद्मस्य प्रभं सन्निभं मुखं यस्य । सन्तायितं वर्द्धितं सतां अनन्तायाः पृथिव्याः अमराणां ब्राह्मणानाञ्च सुखं येन । चिन्ता चासौ आमयः व्याधिश्चेति तौ एव दवः अग्निः तेन सन्तापितानां जनानां कन्द सुख-दायक । अब्जज ब्रह्मा मुखं आदि येषां वृन्दारकाणां देवानां तै र्नुत स्तुत । भन्दात्मकं शुभदायकं कल्याणकरम् इति यावत् गुणवृन्दं यस्य । अतुला दृढ़ा च सन्धा प्रतिज्ञा मर्य्यादा वा यस्य । अमलश्च शुभश्च गन्धः अङ्गपरिमलो तेन आढच संयुक्त,

---

इन्दीवर

बन्धु रूप पद्म का आनन्द दायक माया बन्धन रूप अन्धकार निरोधक-मिश्र पुरन्दर जगन्नाथ नन्दन रूप चन्द्रमा सतत विश्वको आनन्दित करते हैं ।।५०।। तुम्हारी जय हो, तुम भक्तगण के अन्तः करण में स्फुरण शील हो, सज्जन वृन्द को उच्छिन्न करने के निमित्त व्रत धारण कारी कलि को तुम विनष्ट करते हो, अर्थात् तुम कलिदोष निवर्त्तक हो । स्थावर जङ्गमात्मक विश्व का नियामक तुम हो तुमने व्रजरस प्रदान द्वारा जनमण्डली को सन्तर्पित किया है । तुम्हारी दशन ज्योति से कुन्द कुसुम पराजित है । प्रस्फुटित कमल के तुल्य तुम्हारा मुख है । तुम साधु गण एवं भूसुर—ब्राह्मण वृन्द्र की सुख वृद्धि करते हो, आधिव्याधि रूप अग्नि से दन्दह्यमान जनगण का तुम सुख दायी हो । ब्रह्मा प्रमुख देव गण भी तुम्हारी स्तुति करते हैं । तुम्हारे गुण वृन्द निखिल कल्याण दायक हैं । तुम्हारी प्रतिज्ञा अथवा मर्य्यादा अतुलनीय एवं दृढ़ है । तुम्हारे अङ्ग से

ढय शरणबन्धो' नवरस सिन्धो'
जय जय देव ॥ ५१

चन्द्रेन्दीवरकुन्द-शीतलतरं सन्ताप-संशान्तिकृत्
सौन्दर्य्यात्म्य–मरन्दमन्दिरमिदं सौगन्ध्य-सन्धारकम् ।
भक्तेन्दिन्दिर-वृन्द-नन्दि मृदुलं रात्रिन्दिवं दीप्यतां
श्रीगौरेन्दुपदारविन्द-युगलं मत्स्वान्तवेशन्तके ॥ ५२

अम्बुजभवमुख-विबुध-सुवन्दित'
कम्बुविजयिगल' निजरतिनन्दित ।
शम्बररिपु-रिपुनुत' रुचिनिन्दित
शम्बर-रुहपद' सहृदय-वन्दित ॥ धीर ॥५३

(१४)

दम्भादिक-कुम्भीरं वीक्ष्य भयङ्करमिमं भवाम्बुनिधिं ।

जीवानां शरणं रक्षिता च बन्धुश्च । नवानां नूतनानां रसानां श्रवणादि नवविधभक्ति-रसानां वा सिन्धो ! हे देव—त्वं जय जय—एतादृशं गुण–जातं आविष्कुरु ।।५१।।

कलिकान्ते श्लोकमाह—चन्द्रे ति । इदं मत्सम्मुखे दृश्यमानं श्रीगौरचन्द्रस्य पादपद्म युगं मम स्वान्तः एव वेशन्तकं क्षुद्रं सरः तस्मिन् रात्रिन्दिवं दिवारात्रं दीप्यतामित्यन्वयः । कीदृशं तत्—चन्द्रश्च इन्दीवरं पद्मश्च कुन्दश्च तेभ्योऽपि शीतलतरं—आध्यात्मिकादि-सन्तापानां सम्यक् शान्तिकृत्—सौन्दर्य्यात्मकस्य मरन्दस्य मधुनः मन्दिरं आश्रयस्थलं—सौगन्धस्य सम्यक् धारकं—भक्ता इव इन्दिन्दिरा भ्रमरा स्तेषां वृन्दं नन्दयतीति तादृक् च मृदुलश्च ।।५२।। श्लोकान्ते विरुदं रचयति—अम्बुजेति । ब्रह्मशिवादि-देवगणैः सुष्ठु वन्दित ! कम्बु शङ्खं विजयते इति तादृक् गलः यस्य । निजस्य रत्या प्रेम्ना एव नन्दित ! शम्वर-रिपुः कामः तस्य रिपुः शिवः तेन नुत स्तुत । रुच्या प्रभया निन्दित शम्बररुहस्य पद्मस्य पदं व्यवसितं मर्य्यादेति यावत् येन । सहृदयैः सामाजिकैः वन्दित ।।५३।।

(१४)

विमल शुभगन्ध प्रसृत होतो है । तुम ही जीव वृन्द के शरण्य एवं बन्धु हो । नवरस अथवा श्रवणादि नवविधा भक्ति रसका तुम ही निधान हो । हे एतादृश गुण गरिममय गौर ! तुम्हारी जय जय कार हो ।।५१।। श्रीगौरचन्द्र के मृदुल पदार विन्द युगल मदीय चित्तसरसी में अहर्निशि देदीप्यमान हो । उक्त अरविन्द,-चन्द्र, पद्म, एवं कुन्द की अपेक्षा से भी अधिक सुशीतल, सकल सन्ताप सम्यक् शान्ति कारक, सौन्दर्य्य मधुर मन्दिर, सौगन्ध्यवासभूमि, एवं भक्त मधुकर वृन्द का आनन्द दायक हैं ।।५२।।

ब्रह्मा शिवादि देवगण तुम्हारी वन्दना उत्तम रूप से करते हैं । तुम्हारे गलदेश, शङ्ख की भी पराजित करता है । तुम स्वानन्द में ही विभोर रहते हो । शम्बरारि कामका शत्रु शिव भी तुम्हारा स्तव करते हैं । तुम्हारी कान्ति से पद्म सुषमा भी निर्जित है । सहृदय भक्त वृन्द तुम्हारो वन्दना करते हैं ।।५३।।

मां भीतम्विश्वम्भर कम्पितमनुकम्पया पाहि ॥ अरुणाम्बुरुहं ॥५४

जय नव चम्प स्फुटशण सम्पत्
स्थिरतर शम्पा जयि रुचि सम्पा
त' सदनुकम्पा कृतवरकम्पा
कुलित' निलिम्पा बलि नुति सम्पा
दित सुख' लम्वा च्चित पद' कम्बवा-
कृतिगल' जम्ब्वाभ चिकुर' शम्वा
खिल जगद'म्बा-पदनत' लम्वा-
लक-मुख' जम्भा हित सुख सम्भा
वनपर' दम्भान्वितजन सम्भा-
षविमुख' रम्भा समभुज' जृम्भा

अथारुणाम्बुरुह--कलिकारम्भे श्लोकमाह—दम्भेति । हे विश्वम्भर ! दम्भादिः कुम्भीरो यत्र तं भयङ्करं सर्व्वनाशकरं इमं भवसमुद्रं वीक्ष्य भीतं कम्पितञ्च मां अनुकम्पया पाहि परित्राहि । 'विश्वम्भर'-पदेन विश्ववासिनां भरणपोषणकारित्वे तव नाम सार्थक्यान्मम चापि विश्वान्तः पातित्वे तवानुकम्पायाः भाजनत्वं, नान्यथेति मन्तव्यमिति ध्वनिः ॥५४॥ श्लोकान्ते कलिकामाह—जयेति । नवचम्पानि च स्फुटानि विकशितानि शणकुसुमानि च तेषां या सम्पत् शोभादिका तथा स्थिरतरा या शम्पा विद्युत् तें जयति पराजयते रुचि–सम्पातः किरणच्छटा यस्य । सत्सु भक्तेषु अनुकम्पया कृतो यो वरः कम्पः तेन आकुलित व्याकुल । निलिम्पावल्याः देवानां नुत्या स्तवेन सम्पादितं सुखं यस्य । लम्वा लक्ष्मीः तया अर्च्चितौ पदौ यस्य । कम्वुः शङ्खः तस्याकृतिरिव गलो यस्य । जम्बाः जम्बुफलस्य आभा इव चिकुरः केश–कलापो यस्य । शम्वं कङ्कणवत् अखिलं जगद् यस्य, शम्वं भाग्यवत् अखिलजगत् येन । अम्वायाः शचीदेव्याः पदयोः नत । लम्वाः लम्वायमाना अलकाः चूणकुन्तला यत्र तादृशं मुखं यस्य । जम्भस्य तन्नामकस्यासुरस्य अहितः शक्रः इन्द्र स्तस्मै सुखं सम्भावनपर प्रदातः । दम्भान्वित-जनानां अहङ्कृतानां सम्भाषे

अरुणाम्बुरुह (१४)

हे विश्वम्भर ! दम्भकुम्भीरादि समाकुल सर्वनाशकर यह भवसमुद्र दर्शन से भीत एवं कम्पित मेरे प्रति कृपावलोकन कर त्राण करो ।।५४।। हे गौर ! तुम्हारी जय हो, तुम्हारी अङ्ग की किरण च्छटा नव चम्पक एवं विकशित शण पुष्पादि शोभा सम्पत्ति को एवं स्थिरतर विद्युद् दाम को परजित करती है । भक्त वृन्द को कृपा वितरण करने के निमित्त तुम कम्प कम्पान्वित होते रहे हो । देवगण कृत स्तव में तुम्हारा सुखोदय होता है । लक्ष्मी तुम्हारे चरणार्च्चन करती हैं । तुम्हारे गलदेश शङ्खाकृति है । जम्बुफल की आभायुक्त नीलवर्ण—तुम्हारे केश हैं । अखिल जगत् तुम्हारे कङ्कणवत् है, अथवा निखिल जगत् को । तुमने भाग्य शील किया है । स्वीय माता शची देवी के चरणों में तुम प्रणत होते हो । तुम्हारे वदन मण्डल में अलक कुटिल कुन्तल समूह दोदुल्यमान हैं ।

परिलसदम्भोजवदन' कम्भोः
कुरु मम देव ॥५५

सम्वीतोऽम्बुज-सम्भवादि-विबुधै र्नारं वहद्भि र्वपुः
प्रालम्वं सुमनः कदम्ववलितम्बिभ्रत् पदे लम्बितम् ।
सम्वीयाम्वरमम्वुदद्युतिधरं नीलाम्बुजं भ्रामयन्
श्रीविश्वम्भर ! संविभाहि भगवं स्त्वं मे हृदम्भोरुहे ॥५६

खण्डित-बलिकलि-दम्भक । पण्डित-मति-सुख-लम्भक ।
रञ्जकजन-परिरम्भक । जञ्जपकहृदुपलम्भक ॥ धीर ॥५७

(१५)

खल्यानल्याबहुला मृद्नल्लौल्यादिकोल्लसद्वल्लीः ।

वाक्यालापे विमुख। रम्भा कदली तस्याः समौ भुजौ यस्य, जृम्भया हास्य विकाशेन परिलसत् शोभमानं अम्भोजवदनं पद्ममुखं यस्य। भोः देव ! मम कं सुखं कुरु दास्य-सुखं देहि ॥५५॥ कलिकान्ते श्लोकमाह—सम्वीत इति । हे भगवन् परमसुन्दर ! श्रीविश्वम्भर ! त्वं मे हृदेव अम्भोरुहं पद्मं तस्मिन् संविभाहि संप्रकाशितो भव। कीदृशो-ऽसौ नारं वपुः वहद्भिः मनुष्यदेहधारिभिः अम्बुज-सम्भवादि-विबुधैः ब्रह्मादिदेवगणैः सम्वीतः परिवेष्टितः, गलदेशात् पदे लम्वितं सुमनसां पुष्पाणां कदम्वैः समूहैः वलितं रचितं प्रालम्वं माल्यं [प्रालम्वमृजुलम्वि स्यादित्यमरः] विभ्रत् धारयन्, अम्वुदस्य मेघस्य द्युतिधरं कान्ति-विशिष्टं अम्वरं वस्त्रं सम्वीय परिधाय तथा नीलाम्वुजं भ्रामयन् संप्रकाशितो भव ॥५६॥ श्लोकान्ते विरुदं रचयति—खण्डितेति । खण्डितः विनाशितः बलिनः बलवतः कलेः दम्भः अहङ्कारो येन । पण्डितानां मतौ बुद्धौ सुखेन लम्भक प्रापक यद्वा पण्डित--मतये विबुधजनाय सुखं भजनसुखं लम्भयति प्रापयतीति तादृश । रञ्जक-जनस्य अनुरागिणः परिरम्भक आलिङ्गन-दायक। जञ्जपकानां पुनः पुनः स्वं जपतां भक्तानां हृदि उपलम्भः प्राप्ति र्यस्य ॥५७॥

(१५)

'जम्भ' नामक असुर का इन्द्र का सुख प्रदायक तुम हो। अहङ्कृत जनगण के सहित वाक्यालाप में तुम विमुख हो, तुम्हारे भुजद्वय रम्भासदृश हैं। तुम्हारे पद्ममुख हास्य विकाश से शोभमान है। हे देव ! मुझ को तुम्हारे दास्य सुख दान करो, ॥५५॥ हे परम सुन्दर विश्वम्भर ! तुम मेरे हृदय पद्म में सु प्रकाशित हो ओ। तुम मनुष्यदेह धारी ब्रह्मादि देव गण कर्त्तृक परिवेष्टित हो, तुम्हारे गल देश से चरण पर्य्यन्त पुष्प समूह के द्वारा विरचित प्रालम्ब- ऋजु लम्बायमान माल्य दोद्युल्यमान है। तुम्हारे परिधान में मेघ कान्ति नील वसन है, एवं हस्त में नील कमल घूर्णायमान है ॥५६॥ बलवान् कलिका अहङ्कार विचूर्ण तुमने किया है। पण्डित वृन्द की बुद्धि में तुम सुख से स्फुरित होते हो, अथवा विबुध जनगण को भजन सुख समर्पण करते हो। अनुरागी जन को तुम आलिङ्गन प्रदान करते हो। तुम्हारे नाम जप कारी भक्त वृन्द के हृदय में तुम उपस्थित होते हो ॥५७॥

गौड़ाचले सुकलयो गौरद्विपतल्लजः समुल्लसति ।। कह्लारं ।।५८

विमलित भिल्लान्ध्रक-खश-झल्ला

ऽतुल नवमल्ली वरगिरि (शिव) मल्ली

कुसुममतल्ली मणिसरवल्ली-

वलयित' विल्ली चलन-सुभल्ली-

विदलित-सल्ली लघुवति हल्ली-

हृदय' कदल्या र्च्चितभुज' हल्या-

दृत पद' खल्या सुनिविड़ नल्या-

दहन' शकुल्या कृतिदृग' तुल्या

नन' रसकुल्या वितवरकुल्या-

अथ कह्लार—कलिकारम्भे श्लोकमाह—खल्येति । खल्या खलसमूह एव नल्या नल-संहतिः तया बहुलाः उत्प्रधानाः । लौल्यं लालसा आदि येषां काम-मोहादीनां ते एव उल्लसन्त्यो वल्लयः लताः ताः मृद्नन् मर्द्दयन् सुकलयः सुदक्षो गौरः एव द्विपतल्लजः हस्ति-श्रेष्ठः गौड़-पर्व्वते सम्यक् उल्लसति प्रकाशते । ५८।। श्लोकान्ते कालिकां रचयति-विमलितेति । हे देव ! जनानां हृदि उल्लस । विमलिता विशुद्धीकृता भिल्लाश्च अन्ध्रकाश्च खशाश्च झल्लाश्च येन । अतुला नवमल्ली च वरा श्रेष्ठा गिरिमल्ली कुटजं[शिवमल्लीति पाठे वकं] एताभिः कुसुम-मतल्लीभिः पुष्प-श्रेष्ठैः मणि सर-वल्लीभिः मुक्ताहारैश्च वलयित वेष्टित । चिल्लीचलनैः भ्रूचलनैरेव सुष्ठुभल्लीभिः अस्त्रविशेषैः विदलितानि सल्लीलानां युवति-पल्लीनां युवतिसमूहानां हृदयानि येन । कदल्या अर्च्चितौ भुजौ यस्य । हलिना नित्यानन्द-रूपबलदेवेन आदृतौ पदौ यस्य । खल्या खल-समूहः एव सुनिविड़ा प्रगाढ़ा नल्या नल-सन्ततिः तस्याः दहन पावक । शकुल्याः मत्स्यविशेषाया. आकृतिरिव

कह्लार (१५)

खल समुद्र रूप नल (वंश) वृन्द बहुल लोभ मोहादि उल्लसित लता राजि को मर्दन पूर्वक सुदक्ष गौर नामक हस्ति श्रेष्ठ गौड़ पर्वत में प्रकाशित हो रहे हैं । मत्तहस्ती यद्रूप पर्वत मध्य में नल नामक तृण विशेष प्रधान सुन्दर सुन्दर लताश्रेणी को विमर्दन करता है, तद्रूप श्रीगौर सुन्दर भी गौड़ देश में उदित होकर खलवृन्द प्रधान लोभ मोहादि रिपुसमुदाय को विनष्ट कर शोभित हैं ।।५८।। हे महाप्रभो ! तुमने भील, अन्ध्रक खश, झल्ल प्रभृति जाति को शुद्ध किया है । अतुलनीय नवमल्लिका एवं गिरिमल्लिका कुटज प्रभृति श्रेष्ठ श्रेष्ठ पुष्प समूह द्वारा रचित हार से एवं विविध मुक्ता हार से तुम्हारा देह सुशोभित है । तुम्हारे कटाक्ष चालन रूप अस्त्र विशेष के द्वारा लीला विनोदी युवतीवृन्द का हृदय छिन्न भिन्न हो जाता है । कदली वृक्ष तुम्हारे भुज द्वयकी प्रशंसा करता है । नित्यानन्द रूप बलदेव भी तुम्हारे चरण युगल को आदर करते हैं । "खल समूह रूप नल नामक तृण विशेष को तुम दग्ध करते हो, शकुली नामक मत्य की आकृतिवत् तुम्हारे लोचन है । तुम्हारे वदन की तो तुलना हो ही नहीं सकती है । रस

गम' कलिशल्यो   द्धरण सुकल्यो'

लस हृदि देव ॥५६॥

कल्लोलेन तटस्थवल्लिवलयं प्रोल्लासयन्त्युल्वणं
प्रेम्ना हल्लकतल्लजेन सुखकृल्लावण्यमुल्लम्भिता ।
लीलोल्लालितभक्तबुद्धिनलिनीवल्लीमतल्लीकुला
श्रीविश्वम्भर लालसीति तव सल्लीलालि-कल्लोलिनी ॥६०

दुर्लभपादाम्बुजयुग' सुवशित-
वल्लभनामावनिसुरवर-सुत'
वल्लभबालारतिरुचि-सुबलित ।
पल्लवशोभाजयिकर-विलसति ॥ धीर ॥ ६१॥

दृक् लोचनं यस्य । अतुल्यं आननं यस्य । रस-कुल्यया रस-प्रवाहेण अविता रक्षिता उत्तम मङ्गल-कुलोद्भवा अगमा वृक्षा येन । कलिशल्योद्धरणे कलिकल्मष-नाशने सुकल्य सुदक्ष ॥५६॥ कलिकान्ते श्लोकमाह—कल्लोलेनेति । हे श्रीविश्वम्भर ! तव सल्लीलालिः उत्तम-लीलाराजिरेव कल्लोलिनी नदी लालसीति विराजतितमाम् । कीदृश्यसौ— कल्लोलेन रसेन, पक्षे तरङ्गेण तटस्था भक्ता एव वल्लीसमूहस्तं पक्षे तटवर्त्तिनीं लता-श्रेणीं उल्वणं परिस्फुटं समधिकं यथा स्यात्तथा प्रोल्लासयन्ती—प्रेम्ना हल्लकानां रक्त-सन्ध्यकानां तल्लजेन श्रेष्ठेन सुखदायिका च लावण्यं सुषमां उल्लम्भिता प्रापिता तथा लीलया उल्लालिता संपोषिता भक्तानां बुद्धिरेव नलिनीनां वल्लीमतल्ली लताश्रेष्ठा तासां कुलं समूहो यत्र सा ॥६०॥ श्लोकान्ते विरुदं रचयति – दुर्लभेति । दुर्लभ योगिज्ञानिभि दुष्प्राप्यं यत् पादाम्बुजयोः युगं तेन सुष्ठु वशीकृतः वल्लभनामकस्य अवनिसुरवरस्य ब्राह्मण-वर्य्यस्य सुतो विट्ठलनाथः येन । वल्लभाचार्य्यस्य बालायाः कन्यायाः लक्ष्मीप्रियाया रत्या रुच्या च सुबलित । पल्लवानां शोभाजयी यः करः तस्य विलसितः विलासो यस्य ॥ ६१ ॥

प्रवाह के द्वारा तुम उत्तम कुलोद्भव भक्त रूप वृक्ष श्रेणी की रक्षा करते रहते हो कलिकल्मष नाशन में तुम सुदक्ष हो । हे देव ! हमारे हृदयोल्लास करो, अर्थात् हृदय में स्फूर्त्ति प्राप्त होओ ॥५६॥ हे श्रीविश्वम्भर ! तुम्हारी अत्युत्कृष्टा लीला विनोदादि रूपा नदी समधिक शोभा विस्तार कर रही है । वह नदी दास्य सख्यादि रस रूप तरङ्ग द्वारा तटवर्त्ती भक्त रूपा लता श्रेणी को अत्यधिक आनन्द प्रदान करती है । प्रेम रूप रक्त सन्ध्यक पुष्प द्वारा सुख दायिका एवं सुषमामण्डिता हुई है । लीला विलास, भक्त बुद्धि रूप नलिनीलता समूह का सम्यक् पोषण कर रहा है ॥६०॥

हे धीर ! योगिज्ञानिवृन्द के सुदुर्ल्लभ चरण युगल द्वारा वल्लभ भट्ट नामक विप्र के उत्तम सन्तान विठ्ठलेश्वर को वशीभूत तुमने किया है । भक्ति रत्नाकर के पञ्चमतरङ्ग में लिखित है-"विठ्ठलेश्वरेर सेवा कृष्णचैतन्य विग्रह ।" वल्लभाचार्य्य को कन्या लक्ष्मी प्रिया देवी प्रीति एवं रुचि से तुम भी आबद्ध हो । नव किशलय शोभा विजयी कर युगल के द्वारा तुम विविध विलास करते हो ॥६१॥

(१६)

कल्याणधारामृतवर्षशीले कन्याननाम्भोरुहमर्दिलीले ।
सल्लोकशोकान्धहृतावतन्द्रे मल्लोचनं रज्यतु गौरचन्द्रे ।

चम्पकं ॥६२॥

वल्लभ-दुहितृवल्लभ' महितृ
सज्जनभरक' दुर्जन-लवक ।
मन्दरशिखर सुन्दर' नखर
भर्त्सितविधुक' कुत्सितमधुक
सुस्मयसहित' विस्मयरहित
शङ्करमहित' किङ्करसुहित ।
कुक्कुरसदय' ठक्कुर' सदय ।
सज्जितवदन लज्जितमदन ।

---

(१६)

अथ चम्पक—कलिकारम्भे श्लोकमाह—कल्याणेति । गौरचन्द्रे मम लोचनं रज्यतु अनुरक्तीभवतु । किम्भूते—कारुण्यधारारूपामृतवर्षण-शीले, कन्यायाः गङ्गा-रोधसि समागतायाः, पक्षे कन्याराशेः आननं वदनमेवाम्भोरुहं तस्य मर्द्दनकारिणी लीला यस्य तथा सल्लोकानां सद् भक्तानां शोक एवान्धं अन्धकारं तस्य हृतो नाशविषये अतन्द्रे अनलसे, पक्षे स्पष्टं ॥६२॥ श्लोकान्ते कलिकां रचयति—वल्लभेति । वल्लभाचार्य्यस्य दुहिता लक्ष्मीप्रिया तस्याः वल्लभः प्राणपते । महितारः पूजकाः ये सज्जनाः तेषां भवः क्षेमः यतः, भरकेति पाठे तेषां भरणपोषण-कारकेत्यर्थः । दुर्जनानां लवक छेदक । मन्दर शिखरमिव सुन्दर । नखरैः भर्त्सिताः धिक्कृताः विधवः चन्द्रा येन । कुत्सितं मधु यस्मात् तेन सुस्मयेन सुमधुर-हास्येन सहित । विस्मय-रहित गर्व्व-शून्य, शङ्करेण शिवेन पूजित । किङ्कराणां सुष्ठुहितकारिन् । शिवानन्दस्य कुक्कुरं प्रति सदय ।ठक्कुर पूज्य । सदय स्व-भावतः एव सर्व्वान् दयते इत्यर्थः । सज्जितं यत् वदनं तेन लज्जितः मदन येन । खण्डितः

चम्पक (१६)

कारुण्य धारा रूप अमृत वर्षण शील—गङ्गातट में कन्या का वदनपद्ममर्दन शील पक्ष में कन्या राशि का वदन पद्म मर्दन शील, लीलाविशिष्ट -भक्त वर्य्य का शोक रूप अन्धकार विनाश करने में अनलस गौरचन्द्र में मेरा नयन आसक्त होवे ।।६२।।

वल्लभाचार्य्य की कन्या लक्ष्मी प्रिया का तुम प्राण पति हो । तुम्हारा पूजक सज्जन वृन्द का श्रम विधान करते हो, अथवा भरण पोषणादि करते हो, दुर्जन वृन्द का संहार तुम करते हो, मन्दर पर्वत के शृङ्गवत् तुम अति सुन्दर हो, तुम्हारे नखर श्रेणी चन्द्र समूह को धिक्कार करती हैं । मधु विनिन्दी सुहास्य से तुम्हार वदन शोभमान है । तुम ही गर्व शून्य हो शङ्करी पूजा करती है । तुम भृत्य वर्ग का हित साधन करते हो, शिवानन्द सेन के कुत्ते के प्रति तुमने दया की है । तुम्हारे सज्जित वदन को देखकर मदन

खण्डितकुनय' पण्डितविनय'
नन्दय जगद मन्दय भगद ।। देव ६३।।
कीर्त्तनविलासकर्त्रे कलिबलहर्त्रे प्रियारुचि धर्त्रे ।
गङ्गापुलिनविहर्त्रे नमोऽस्तु विष्णुप्रियाभर्त्रे । ६४
सन्दमित कुन्द-वृन्दरद' शन्द ।
सन्दयितमन्द' भन्दकुलकन्द ।।धीर ।।६५

(१७)

भो विश्वम्भर सार्व्वभौम भवतो भक्ता महासैनिकाः
कारुण्याभिध * दिव्यकाञ्चनरथारूढ़ा भ्रमन्तो भुवि ।
त्वत्सङ्कीर्त्तनवाण–सन्तति-महावृष्टि तथा तन्वते
येन व्याकुलिताघसैन्यनिकरः कुण्ठत्वमाप्तः कलिः ।। वञ्जुलं ।।६६

कुनयः कुनीतिः येन । पण्डितेषु विनयो यस्य ! हे भगद वाञ्छितपूरक ! जगत् नन्दय आमोदय अमन्दं अत्युत्कृष्टं कुरु च ।।७३।। कलिकान्ते श्लोकमाह—कीर्त्तनेति । प्रियारुचि श्रीराधिकाकान्तिमित्यर्थः । स्पष्टार्थमन्यत् ।।६४।। श्लोकान्ते विरुदं रचयति– सन्दमितेति । सन्दमितं तिरस्कृतं कुन्दवृन्दं यैः एतादृशाः रदा दन्ता यस्य । शं कल्याणं ददातीति । सन्दयिता अतिप्रिया मन्दाः मूर्खाः अल्पभाग्या अपि यस्य । भन्दकुलानां मङ्गलसमूहानां कन्द मूल ।।६५।।

(१७)

अथ **वञ्जुल**--कलिकारम्भे श्लोकमाह—भो इति । भो विश्वम्भर सार्व्वभौम राजचक्रवर्त्तिन् ! भवतो भक्ताः महासैनिकाः कारुण्यनामके दिव्यस्वर्णरथे आरूढ़ाः सन्तः भुवि भ्रमन्तः तव संकीर्त्तनरूप-वाणसमूहानां महावृष्टि तथा तन्वते विस्तारयन्ति—यथा व्याकुलिता अघरूपाः सैन्यनिकरा यस्य तादृशः कलिः कुण्ठत्वं मन्दत्वमाप प्राप्तवान् ।।६६।।

लज्जित होता है । तुम कुनीति को खडित करते हो एवं पण्डित वृन्दके प्रति विनयाचरण करते हो, हे वाञ्छा कल्पतरु ! तुम जगत् को आनन्द प्रदान करते हो, एवं अत्युत्कृष्ट करते हो, ।।६३।। तुम सङ्कीर्त्तन विलासी हो, कलिबल नाशन हो, श्रीराधा का कान्ति चोर हो, एवं गङ्गा पुलिन विहारी हो, तुम विष्णु प्रिया प्राण वल्लभ हो, तुम को नमस्कार करता हूँ ।।६५।। तुम्हारी दन्त पङ्क्ति कुन्द वृन्द को पराजित करती है । तुम, कल्याण दायी हो, मन्द–मूर्ख अथवा हतभाग्य गण भी तुम्हारे अति प्रिय है । तुम मङ्गल समूह का मूलाधार हो ।।६५।।

वञ्जुल (१७)

हे राजचक्रवर्त्ति विश्वम्भर ! तुम्हारे भक्त रूप महासैनिक वृन्द कारुण्य नामक दिव्य स्वर्ण रथ में आरोहण कर पृथिवी में भ्रमण कर रहे हैं, एवं तुम्हारे सङ्कीर्त्तन रूप वाण समूह की वर्षा के द्वारा पाप निवह रूप व्याकुल सेनाबल संवेष्टित स्वयं कलि,-- कुण्ठित व्यस्त समस्त हो गया है ।।६६।।

जय कलि सिन्धुरदलन सुबन्धुर-
हरिवर' मञ्जुलविचकिल वञ्जुल
विरचितमण्डन' कुमत-विखण्डन ।
करिकरगञ्जनभुज' जनरञ्जन
गुणचय' पण्डित जनगणमण्डित'
सददितिनन्दन कुलकृतवन्दन ।
मणिमयकङ्कण' निजपदकङ्कण
हृतजड़जङ्गम दुरितभुजङ्गम-
गरलक' चञ्चल मधुरदृगञ्चल ।
कुरु मम शं प्रतिदिशमयि संप्रति ।। देव ।। ६७

गौड़ाम्बरान्तरुदयन्निजभक्तवृन्द-
स्वान्तेन्दुकान्तनिकुरम्वकमुन्दयन् द्राक् ।
मोहान्धकारनिकरन्दमयन् समन्तात्
श्रीगौरचन्द्र तव नन्दति कीर्त्तिचन्द्रः ।।६८

श्लोकान्ते कलिकां रचयति--जयेति । कलिरेव सिन्धुरः हस्ती तस्य दलने सुबन्धुरः मनोरमश्चासौ हरिवरः सिंहश्रेष्ठश्चेति। मञ्जुलानि मनोमदानि यानि विचकिलानि मल्लीपुष्पाणि तथा वञ्जुलानि वेतसानि अशोकानि वा तै विरचितं मण्डनं यस्य । कुमतानां विशेषेण खण्डक । करिकरस्य हस्ति शुण्डस्य गञ्जनौ तिरस्कारिणौ भुजौ यस्य। जनरञ्जको गुणचयो यस्य पण्डित-जनगणैः मण्डित । सन्तः ये अदिति-नन्दनाः देवा स्तेषां कुलैः समूहैः कृतं वन्दनं यस्य । मणिमये कङ्कणे यस्य । निजपदस्य कस्य जलस्य कणेन हृतं स्थावर-जङ्गमानां दुरितं पापरूपं भुजङ्गम-गरलं सर्पविषं येन । चञ्चलौ मधुरौ च दृगञ्चलौ कटाक्षौ यस्य । अयि गौर संप्रति अधुना मम प्रतिदिशं सर्व्वतः शं मङ्गलं कुरु ।।६७।। कलिकान्ते श्लोकमाह—गौड़ेति । हे श्रीगौरचन्द्र ! तव कीर्त्तिचन्द्रः नन्दति प्रकाशते । किम्भूतोऽसौ—गौड़ाम्वरान्तः गौड़ाकाशे उदयन् निजभक्त वृन्दानां स्वान्तं स्वस्वरूपं अन्तः करणमिति यावत् तदेव इन्दुकान्तानां चन्द्रकान्तानां निकुरम्वकं समूहं

हो गौरचन्द्र ! तुम कलि काल रूप हस्ती दलन में मनोरम सिंहवर्य्य हो, मञ्जुल मल्ली एवं अशोक पुष्प द्वारा विरचित हार से तुमि भूषित हो, कुमत्त खण्डन में तुम पारदर्शी हो । करिकर विजयी तुम्हारे भुजदण्ड है । तुम्हारी गुणावली जन मण्डली का तृप्ति कारक है । तुम पण्डित जन गण कर्त्तृक वेष्टित हो, उत्तम उत्तम देव गण तुम्हारी वन्दना करते हैं । तुमने मणिमय कङ्कण धारण किया है । निज पद जलकण द्वारा तुमने स्थावर जङ्गम का पाप रूप सर्प विष विनष्ट किया है । तुम्हारे नयन कोण चञ्चल एवं मधुरतर है ।। हे गौर ! अधुना मेरे प्रति सर्वथा कल्याण विधान करो ।।६३।। हे श्रीगौर चन्द्र ! तुम्हारे कीर्त्ति चन्द्र—गौड़ाकाश में उदित होकर निज भक्त वृन्द के अन्तः करण

प्रियजनवाटी व्रजरसनाटी-
कृतिपरिपाटी सुखित' कणाटी-
लनयन' धीर ॥६९

(१८)

हंसान् मानसघनरसरसनोत्कण्ठाकुलान कुर्व्वत् ।
सारङ्ग-रङ्गजनकं तव कीर्त्तन-गर्जितं जयति ॥ कुन्दं ॥७०

मिश्रकुलपद्ममित्र' गुरुसद्म-
लब्धवरविद्य' शुद्ध' निरवद्य'
वन्द्यजननम्र भक्तिरसकम्र ।
भव्यबुधवर्ग दिव्यसुखसर्ग ।

द्राक् झटिति उन्दयन् द्रवीकुर्व्वन् तथा समन्तात् सर्व्वतः मोहान्धकार-निकरं दमयन् नाशयन् च विराजतितरामित्यर्थः ॥६८॥ श्लोकान्ते विरुदं रचयति—प्रियेति । प्रियजनस्य चन्द्रशेखरा-चार्य्यस्य वाट्यां व्रजरसस्य नाटीकृतेः नाटचस्य या परिपाटी कौशलं तेन सुखित आनन्दित । कणाटीलनयन खञ्जन-लोचन ॥६९॥

(१८)

अथ कुन्द-कलिकारम्भे श्लोकमाह—हंसानिति । हंसान् परमहंसान् पक्षे राजहंसान् । मानसो मनसा स्वाद्यो यो घनो निविड़-ब्रह्मरसादपि निविड़ो रस स्तस्यास्वादने उत्कण्ठा-कुलान्, पक्षे मानस-सरोजलास्वादनोत् कण्ठान् कुर्व्वत् तथा सारङ्गाणां भक्तानां पक्षे चातकानां रङ्ग-जनकं रङ्गविस्तारकं च सत् तव कीर्त्तनमेव गर्जितं जयति—सर्व्वोत्-कर्षमाविष्करोति ॥७०॥ श्लोकान्ते कलिकां रचयति—मिश्रेति । मिश्रकुलं जगन्नाथमिश्र-वंशः एव पद्मं तस्य मित्रः सूर्य्यः वंशोज्ज्वल-कारकेत्यर्थः । गुरोः गङ्गादासस्य सद्मनि गृहे लब्धा गृहीता वरा विद्या येन । निरवद्य दोषरहित । वन्द्यजनेषु गुरुजनेषु नम्र अथच

रूप चन्द्र कान्त मणि समूह को शीघ्र द्रवीभूत कर सब दिक् के मोहान्धकार नाश पूर्वक दीप्ति शील है ॥६८॥ प्रिय चन्द्रशेखराचार्य्य के भवन में व्रजरस विभोर होकर नाट्य परिपाटी विरचनके द्वारा तुम सुखी हुये हो । तुम्हारे नयन, खञ्जन पक्षी के समान सतत घूर्णायमान हैं ॥६९॥

कुन्द (१८)

मेघ गर्ज्जन जिस प्रकार राज हंस निवह को मानस सरोवर के जलास्वादन में उत्कण्ठाकुल करता है, एवं चातक गण का अतिशय आनन्द विस्तार करता है, तद्रूप श्रीगौर जलधर का कीर्त्तन गर्ज्जन, परम हंस योगी गण को मन मन में आस्वाद्य निविड़ ब्रह्मरस से भी घनतर रसास्वादन में उत्कण्ठान्वित एवं सारङ्ग भक्त वृन्द को प्रेमानन्द मय कर जय युक्त हो रहा है ॥७०॥

तुम, मिश्रकुल पद्म का भास्कर हो, अर्थात मिश्र वंशोज्ज्वल कारी हो, गङ्गादास पण्डित के गृह में तुमने उत्तम विद्याभ्यास किया है । तुम निर्दोष हो । गुरु जन के प्रति

विलप्तकलिधर्म्म' दृप्तखलमर्म्म
तप्तिकृतिशक्त' बन्धुजनरक्त'
तृप्तसुरसंघ' रुच्यतरजङ्घ'
सक्थिजितशुण्ड' पद्मजयितुण्ड
मञ्जुकचमुण्ड' रम्यरुचिकुण्ड
चित्तहरहस्त' सर्व्वगुणशस्त'
सर्व्वसमनृत्यकृष्ट निजभृत्य
वर्ग' मतिमञ्चमद्य मम चञ्च ॥ देव ॥ ७१

गौरचन्द्र तव कीर्त्तिचन्द्रमाश्चित्रतां वहति विश्वमोहिनीं

भक्तिरसे कम्र कमनीय, भव्येषु कुशलेषु बुधवर्गेषु पण्डितेषु दिव्यसुखस्य सर्गः सृष्टि येन। क्लिप्तः प्रवर्त्तितः कलिधर्म्मः नामसंकीर्त्तनं येन। दृप्तानां गर्वितानां खलानां मर्म्माणि तप्तिकृतौ अनुताप-दाने शक्त सक्षम—एतादृशं लीला-विनोदं करोषि येन खला अपि अनुतापानलेन दन्दह्यमाना भवच्छरणं यान्तीति भावः। बन्धुजनेषु रक्त संसक्त। तृप्ताः सुरसंघा देवा येन। रुच्यतरा मनोहरा जङ्घा यस्य : सक्थ्ना ऊरुणा जिता शुण्डा करिकरः येन। पद्मं जयतीति तादृक् तुण्डं वदनं यस्य ! मञ्जुः मनोज्ञः कचः केशः यस्मिन् एतादृक् मुण्डं यस्य। रम्या या रुचिः लावण्यं तस्य कुण्ड कलसी। कुण्डेति रुचेरमृतत्वं व्यज्यते। चित्तहरौ परमसुन्दरौ हस्तौ यस्य। सर्वगुणेषु शस्त मङ्गलकारक। सर्व्वस्य शिवस्य समं यत् नृत्यं तेन कृष्टः निजभृत्यानां वर्गः समूहो येन। अद्य मम मतिरूपमञ्चं चञ्च गच्छ, नृत्यकीर्त्तनं कुरुष्वेति तात्पर्य्यं ॥७१॥ कलिकान्ते श्लोकमाह—गौरेति। हे गौरचन्द्र ! तव कीर्त्तिचन्द्रमाः विश्वमोहिनीं चित्रतां अद्भुतत्वं वहति दधाति। तत् कुत इत्यपेक्षायामाह-चेन् प्रशंसायां यत् यस्मात् अयं अद्भुतचन्द्रः सदा तमः अज्ञानं दुःखं वा, पक्षे राहुं अलं सातिशयं हि निश्चितमेव गिलति नाशयति। कृष्णपक्षमनु भक्तवर्गं, पक्षे स्पष्टं, वर्द्धते।

तुम नम्र अथच भक्ति रस से कमनीय हो, कृतीपण्डित गण को तुमने दिव्यसुख दान किया है। तुमने कलियुग धर्म नाम सङ्कीर्त्तन प्रचार किया है। गर्वित खल जन के हृदय में तुम अनुतापानल प्रज्ज्वलित कराने में सक्षम हो। बन्धु जन में एवं भक्त वृन्द में तुम अनुरक्त हो, तुम्हारे व्यवहार से देवगण तृप्त हैं। तुम्हारे जङ्घाद्वय परम सुन्दर हैं। तुमने ऊरुद्वय के द्वारा करिशुण्ड को पराजित किया है। पद्म विजयी तुम्हारे वदन है। मनोज्ञ केश दामयुक्त तुम्हारा मस्तक है। तुम रमणीय लावण्यामृत के कलस सदृश हो। तुम्हारे हस्तद्वय - चित्त हरण कारी हैं, समस्त गुणों के द्वारा वरेण्य तुम हो शिववत् ताण्डव नृत्य द्वारा तुम भृत्य वृन्द को आकृष्ट करते हो। अद्य मेरा मानस रूप मञ्च में गमन कर अर्थात् मनोमन्दिर में नृत्य करो।॥७१॥

हे गौर चन्द्र ! तुम्हारे कीर्त्तिचन्द्र, विश्वविमोहन वैचित्र्य का प्रकाश करता है, वह दिवानिशि समान भाव से तमोनाश करता है, अथच कृष्ण पक्ष में वर्द्धित होता है। गगन चन्द्र केवल रात्रि में तमोनाश करता है एवं कृष्ण पक्ष में क्षीण होता है। किन्तु तुम्हारी कीर्त्तिचन्द्र अज्ञान—दुःख एवं राहु को भी ग्रास करता है एवं कृष्णपक्षीय भक्त

चेद् गिलत्यलमयं सदातमः कृष्णपक्षमनु वर्द्धते हि यत् ॥७२॥
अद्वैतभूदेवहुङ्कार-संभूत' माधुर्य्यलङ्कार'
सच्छीलपीयूषभृङ्गार' पुष्पौघसंविलग्नशृङ्गार ॥ धीर ॥७३॥

(१६)

सन्नाशयन् कुवलयस्य दुरन्तदुःखं
प्रोल्लासयन् प्रियतमां क्षणदां नितान्तं ।
स्वीयोदयेन दलयं स्तमसां समूहं
देदीप्यते जगति गौरविधुः प्रकामं ॥ वकुलभासुरम् ॥७४॥

जयजयसुरतटिनीतटभावक'
भावकरिपुकलिदलन सुसज्जित'

गगनचन्द्रः खलु रात्रौ अन्धकारनाशकः नतु दिवसे, शुक्लपक्षे एव वर्द्धते, नतु कृष्णपक्षे, अयन्तु दिवानिशमेव अन्धकार-निरोधकः सर्व्वदा सर्व्वत्रोदयशीलश्चेत्यस्याद्भुतत्वं प्रतिपन्नम् ॥७२॥ श्लोकान्ते विरुदं रचयति—अद्वैतेति। अद्वैति-ब्राह्मणस्य हुङ्कारैः सम्भूत प्रादुर्भूत। माधुरी एवालङ्कारो यस्य। सत् शीलं स्वभाव एव पीयुषममृतं तस्य भृङ्गार तत्सदृशेत्यर्थः। पुष्प-समूहैः विलग्नानि रचितानि शृङ्गाराणि मण्डनानि यस्य ॥७३॥

(१६)

अथ वकुलभासुर-कलिकारम्भे श्लोकमाह—सन्निति। जगति गौरविधुः प्रकाशं भृशं देदीप्यते। कीदृगसौ—कुवलयस्य भूमण्डलस्य पक्षे कुमुदस्य दुरन्तदुःख संनाशयन्, क्षणदां उत्सवप्रदां प्रियतमां (विरहिणीमिति भावः नितान्तं सातिशयं प्रोल्लासयन् आनन्दयन्, पक्षे प्रियतमां प्रेष्ठां क्षणदां रात्रि । तथा स्वीयोदयेन तमसां दुःखानां पक्षे अन्धकाराणां समूहं दलयंश्च देदीप्यते ॥७४॥ श्लोकान्ते कलिकां रचयति—जयेति। सुरतटिन्याः गङ्गायाः तटे भावः प्रेमा यस्य । भावकानां ध्यानशीलानां रिपुः शत्रुः कलिः तस्य दलने

गण के सम्पर्क में वर्द्धित होता है ॥७२॥ श्रीअद्वैत नामक विप्रवर्य्य के हुङ्कार से तुम प्रकट हुये हो,। माधुरी ही तुम्हारे सर्वाङ्ग भूषण है। तुम सच्चरित्र निधान हो, पुष्प निवह रचित हार से तुम सुशोभित हो ॥७३॥

वकुलभासुर (१६)

श्रीगौर विधु, जगत् में उदित होकर कुवलय--भूमण्डल, पक्ष में कुमुद गण का दारुण दुःख नाश पूर्वक उत्सव दायिनी-विरहिणी, प्रियतमा को नितान्त आनन्द दान करतः पक्ष में प्रियतमा रात्रि को उल्लसित कर, तमोराशि को दुःख पाप प्रभृति को, पक्ष में अन्धकार समूह को—विदूरित करके अतिशय दीप्ति शील हो रहे हैं ॥७४॥
हे गौर ! तुम्हारी जय जय कार हो। तुमने गङ्गातट में महाप्रेम विकाश किया है। भावुक भक्त वृन्द का ध्यान विघ्न कारक कलिदलन में तुम सर्वदा सुसज्जित हो, सज्जन वृन्द तुम्हारे हृदय को वशीभूत किये हैं। तुम्हारे कुटिल कुन्तल, वर्ण में भ्रमर से भी मनोहर है। हरि ताल के समान तुम्हारी अङ्ग कान्ति है। तुम्हारे लोचन तारादय

सज्जितहृदय' मधुपललितालक ।
तालकवर्ण' हृदयहरतारक ।
तारकनामोत्कीर्त्तनकारक ।
कारकगुण' भुजजित भुजगोरस'
गोरससदृश-वलक्ष-यशोधर ।
शोधरहितजन-पापविदारक ।
दारकराञ्चित' (वाञ्छित) विगत विपल्लव'
पल्लवशोभाजयिपद-सारस ।
सारसनोज्ज्वल' सकल-मनोहर ।
नो' हर भव साध्वसमतिसुन्दर ॥ देव ॥७५

भवता भवतापहारिणा यदि नोदैष्यत गौर भूतले ।
कलिता कलितापतो व्यथा कथमाप्स्यद्विरतिं तदा नृणां ॥७६

सुसज्जित । सद्भि जितं वशीकृतं हृदयं यस्य । मधुपेभ्योऽपि ललिताः मनोहराः अलकाश्चूर्णकुन्तला यस्य । तालकं हरितालमिव वर्णः अङ्गकान्ति र्यस्य । हृदयं हरतीति तादृशी तारका अक्ष्णः कनीनिका यस्य, तारकाणां नाम्नां उच्चकीर्त्तन-कारक, कं सुखं आरयन्ति प्रापयन्ति गुणा यस्य । भुजाभ्यां जितं भुजगस्य सर्पस्य उरः वक्षो येन । गोरसस्य दुग्धस्य सदृशं वलक्षं श्वेतवर्णं यत् यशः तद्धरतीति । शोधरहितानां महापातकिनां जनानां पापानि विदारयति नाशयतीति तादृश । दाराणां विष्णुप्रियाया इति भावः । कराभ्यां अञ्चित पूजित, दारकवाञ्छितेति पाठे तु दारकै र्वाञ्छित अभिलषित । विगतो विपदो लवोपि यतः । पल्लवानां किशलयानां शोभां जयतीति तादृक् पदसारसं पादपद्मं यस्य सारसनं हारभेदः उपवस्त्रं वा, तेन उज्ज्वल । सकलानां स्थावरजङ्गमानां मनः हरतीति । हे अतिसुन्दर ! नः अस्माकं भव-साध्वसं संसरण-भीतिः हर नाशय । ७५॥ कलिवान्ते श्लोकमाह—भवतेति । हे गौर ! भवतापानां आध्यात्मिकानां हारिणा विनाशिना भवता यदि भूतले न उदैष्यत, तदा नृणां कलितापतः कलिप्रभावेन कलिता जनिता व्यथा कथं विरतिं नाशमाप्स्यत् । तवाविर्भावेणैव कलिप्रभावो विनष्ट, जीवाश्च निरातङ्काः सुखं

हृदय चोर हैं। तुम कलियुग पावन नाम समूह का उच्चैः स्वर से कीर्त्तन करते हो। अथवा तारक ब्रह्म नाम का उच्चकीर्त्तनकारी तुम ही हो। तुम्हारी गुणराजि सब को सुखी करती है। तुम्हारे भुजद्वय भुजङ्ग शरीर को पराजित करते हैं। तुम्हारी यशोराशि दुग्धवत् शुभ्र है। महापातकिगण की पापराशि को विदीर्ण करते हो। श्रीविष्णुप्रिया देवी के कर युगल द्वारा तुम पूजित होते रहते हो। "दारकराञ्चित" पाठ से उक्तार्थ होता है, "दारकवाञ्छित" पाठ से बालक गणों के प्रति प्रीतिप्रद तुम हो, अर्थ होता है। सर्व विघ्न विनाशन तुम हो। तुम्हारे पाप पद्म नव किशलय समूह के शोभा विजयी है। मेखलाधारण से तुम उज्ज्वल हुये हो, स्थावर जङ्गमात्मक विश्व का मनोहारी तुम हो। हे अति सुन्दर। हमारी संसार भीति विनष्ट करो ॥७५॥ हे गौर ! भव तापनाशन तुम

विहितकलिभङ्ग' सततनुतगङ्ग ।
चरणनतरङ्क' निहतभवशङ्क ॥ धीर ॥७७

(२०)

श्रीराघवेन्द्र-निजवैभवदर्शनेन
श्रीमन्मुरारिकविमौलि रतोषि येन ।
तस्यातिदुर्गविभवस्य तव स्वरूपं
शक्नोति वर्णयितुमत्र न कोऽपि मर्त्यः ॥ बकुलमङ्गलं ॥ ७८
त्वं धृत-गौरव गौर' वचोमृत-
तर्पित सज्जन सज्जनटोपम ।
नैकविभक्तिक भक्तिकथनेन
सेवकितामर' तामरसेक्षण ।

वसन्तीति तात्पर्य्यम् ॥७६॥ श्लोकान्ते विरुदं रचयति—विहितेति । विहितः कृतः कलेः भङ्गः पराभवो येन । सततं नुता स्तुता गङ्गा येन । चरणेषु नता रङ्का दरिद्रा यस्य । निहता भवस्य संसृतेः शङ्का येन ॥७७॥

(२०)

अथ बकुल मङ्गल-कलिकारम्भे श्लोकमाह—श्रीति । येन गौरेण श्रीरामस्य निज वैभवं दर्शयित्वा श्रीमन्मुरारि कविराजः अतोषि सन्तोषितः—तस्य अतिदुर्ज्ञेय-महिम्नः तव स्वरूपं वर्णयितुं अत्र जगत्यां न कोऽपि मर्त्यः मानवः शक्नोति ॥७८॥ श्लोकान्ते कलिकां रचयति—त्वमिति । हे गौर ! त्वं नः अस्मान् रमय आनन्दयेत्यन्वयः धृतं गौरवं येन महामर्य्यादामय । वचोमृतेन वाक्यसुधया तर्पिताः सन्तोषिताः सज्जना येन । सज्जः सज्जितः नटः उपमा यस्य । गमननटलीलाविशिष्टेत्यर्थः । नैकविभक्तिका बाहुप्रकारका या भक्तिः तस्याः कथनेन सेवकीकृता अमरा देवा येन । तामरसे पद्मे इव ईक्षणे नयने

हो, तुम्हारा उदय यदि इस भूतल में नहीं होता तो, मानवों की कलितापजनित व्यथा की कैसे विरति होती ? ॥७६॥ तुमने कलिको पराभूत किया है । सर्वदा गङ्गा का स्तव तुम करते हो, तुम्हारे चरणों में निखिल रङ्कजन अवनत होते हैं । तुमने भवशङ्का को विदूरित किये हो ॥७७॥

बकुल मङ्गल (२०)

हे गौरचन्द्र ! कविकुल शिरोमणि श्रीमान् मुरारि गुप्त को तुमने श्रीरामचन्द्र का निज वैभव दर्शन कराकर सन्तुष्ट किया है । अतिदुर्ज्ञेय महिम वह तुम्हारा स्वरूप है, उस स्वरूप की वर्णना करने में जगत् में कौन मनुष्य सक्षम होगा ? ॥७८॥ हे गौर ! तुम महामर्य्यादामय हो, वाक्यामृत के द्वारा तुम सज्जन गण को तृप्त करते हो । तुम सज्जित नट तुल्य हो, बहु विध भक्ति कथा के द्वारा देवगण को भी भृत्य किये हो, तुम पद्म पलाश लोचन हो, पण्डित गण को सुखदान करते हो, आध्यात्मिकादि तापत्रय को विदूरित किये हो, साधुवृन्द का सतत पालन करते हो, बालक गण वेष्टित होकर रहते

पण्डितशातद' शातदशात्रत ।
साध्वनिशावक' शावकवेष्टित' (नन्दन)
सत्सुखसञ्चय' सञ्चयनोद्यत ।
सर्व्वशुभालय' भालयशोयुत ।
दिव्यकचामर' चामर–वीजित ।
गोपबधूरसधूरसनोत्सुक ।
कान्तिजितालक' तालकरम्बित
गीतमनोरम' नो' रमयातुल ॥ देव ॥ ७९
श्रेयः षड़िन्द्रियजयञ्च सलोकताञ्च
ह्रानेरभावमपि दासजनेषु दत्त्वा ।
उष्पार्पकोऽपि भगवं स्तुहिनीकरोषि
त्वं तान् पुन स्तदिति भासि विचित्रचर्य्यः ॥८०
स्वहृदिशयित, सुजनदयित ।

यस्य । पण्डितेभ्यः शातं सुखं ददातीति । शातं खण्डितं दशानां आध्यात्मिकादीनां त्रयं येन । साधुनामनिशं सन्ततं अवतीति पालकेत्यर्थः । शावकैः शिशुभिः वेष्टित । शावक–नन्दनेति पाठे शिशूनां आनन्द–प्रद । सतां सज्जनानां सुखसञ्चयः सुखानि यस्मात् । जीवानां भक्तीनां वा सञ्चयने संग्रहे उद्युक्त, यद्वा सत् नित्यं च सुखमानन्दञ्चेति कर्म्म-धारयः, तस्य सञ्चयस्य समूहस्य सञ्चयने संग्रहे रतेत्यर्थः । सर्व्वशुभानामालय । भालं तेजश्च यशश्च ताभ्यां युत । दिव्याः अति मनोहराः कचाः केशा यस्य । 'रलयोरैक्यात्' अमरैः अमलैः श्वेतवर्णै चामरैः वीजित यद्वा अमरै र्देवैः कर्त्तृभिः चामरैः वीजित । गोप-बधूनां रसधुः रसभारः तस्य रसने आस्वादने उत्सुक, कान्त्या जितं आलं हरितालं येन तालैः करम्बितं युक्तं यद् गीतं तेन मनोरम । हे अतुल अनुपम ॥७९॥ कलिकान्ते श्लोकमाह—श्रेय इति । हे भगवन् ! परमसुन्दर ! त्वं दासजनेषु श्रेयः आत्यन्तिकमङ्गलं, षड्वर्गजयं, सालोक्यं तथा सर्व्वथोपचयं दत्त्वा अपि एवं उष्मार्पकः विरहजतापादिकं समर्प्य पुनः तान् तुहिनीकरोषि शीतलीकरोषीति विचित्रलीलाशील स्त्वं विभासि ॥८०॥

हो। तुमसे सज्जन गण, सुख राशि को प्राप्त करते है, तुम लोक संग्रह में अथवा भक्ति संग्रह में उद्यमी हो, केवल तुम ही सकल कल्याणाधार हो, तेज एवं यशोयुक्त तुम हो। तुम्हारे केश दाम अतिसुन्दर है। विमल चामर समूह द्वारा तुम्हारा श्रीअङ्ग वीजित होता है। गोपीवृन्द की रसराशि का आस्वादन में तुम सदा ही उत्सुक हो, कान्ति के द्वारा हरिताल को पराजित किये है। ताल विशिष्ट सङ्गीत में तुम मनोरम हो हे अतुलनीय गौर चन्द्र ! हम सब को आनन्द दान करो ॥७९॥ हे परम सुन्दर गौर ! निज दास वर्ण को श्रयः, आत्यन्तिक मङ्गल, षड्वर्ग—इन्द्रिय जय, सालोक्य, एवं सर्व सौभाग्य सम्पत्तिदान करके भी "विरहज" ताप दान प्रदान करते हो एवं पुनवार शीतल भी करता हो, इस प्रकार विचित्र चरित्र प्रकट कर प्रति भात हो रहे हो ॥८०॥ भक्त

सततमुदित' जगति विदित ।। धीर ।।८१

(२१)

त्वत्केशपाशो ननु गौरचन्द्र स्याच्छम्बरारेः किमु पाश एव !
यतो बधूनामिह दृक्कुरङ्गा निपत्य नोत्थातुमलं भवन्ति ।।८२।।
भवतः प्रभावभानौ भुवनेऽभ्युदिते भयोद्भ्रान्ताः ।
पाषण्डि-पेचकौघा नो जाने बत पलायिताः कुत्र ।।८३

मञ्जर्य्याः कोरकः

गौर' वलत्कलिकाल-भयङ्कर-
भैरव पीड़ितलोक शुभङ्कर ।
भिक्षित-माधवपाप-कदम्बक ।
शिक्षित-भक्तिकथा-निकुरम्बक !
हे वनमालि-महीसुरतर्पक ।

श्लोकान्ते विरुदं रचयति—स्वहृदीति । स्वेषां भक्तानां हृदि शयितं शयनं यस्य । सुजनानां दयित प्रिय । स्पष्टार्थमन्यत् ।।८१।।

(२१)

अथ द्विगादिगणवृत्तक-महाकलिकारम्भे श्लोकद्वयमाह— त्वदिति । ननु भोः गौर-चन्द्रः ! तव केशपाशः शम्बरारेः कामस्य पाशः एव किमु किम् ? तत् कुतः इति चेदाह— यतः यस्मात् इह केशपाशे बधूनां दृक्-कुरङ्गाः नयन-हरिणाः निपत्य उत्थातुं न अलं समर्था भवन्ति । नयन-रोचनीया खलु कचाः ।।८२।। भवतः प्रभावसूर्य्ये इह जगति उदिते सति पाषण्डिन. एव पेचकानां समूहाः भयेन उद्भ्रान्ताः सन्तः कुत्र पलायिताः इति नो जाने । बतेति विस्मये ।।८३।। श्लोकान्ते कलिकां रचयति— गौरेति । हे गौर ! बलवान् कलिकाल एव भयङ्करः भैरवः संहर्त्ता तेन पीड़ितानां लोकानां शुभं करोतीति तादृश । भिक्षितं याचितं माधवस्य पापानां कदम्बं येन । शिक्षितं भक्ति-कथानां निकुरम्बं समूहः

वृन्द के हृदय में तुम शयन करते हो, सज्जन प्रिय तुम ही सदानन्द स्वरूप हैं तुम विश्व विख्यात ही हो ।।८१।।

मञ्जर्य्याः कोरकः (२१)

हे गौरचन्द्र ! तुम्हारे केश पाश, क्या कामदेव का फन्दा, पाश है ? कारण, केश-पाश हे ? कारण, केशपाश में बधूगण के नयन हरिण गण पतित होकर अन्यत्र गमन करने में अक्षम हैं। तुम्हारे केश दाम— लोचन लोभनीय ही है ।।८२।। हे गौर ! इस जगत् में तुम्हारा प्रभाव भानु का उदय होने से पाषण्ड रूप पेचक समूह भय सन्त्रस्तचित्त से कहाँ भग भये हैं, उस का पता नहीं है ।।८३।। हे गौर ! बलवान् कलिकाल रूप भयङ्कर भैरव (संहार कर्त्ता) कर्त्तृक पीड़ित लोकों का कल्याण तुम ही करते हो। तुमने माधाई के समस्त पाप मँगकर लिया है, भक्ति कथा कह कर तुमने सबको शिक्षा

यौवनशालिबधूधृत-दर्पक ।
तामरसद्युतिहारक' चञ्चल
कामरस-समर्पणकारिदृगञ्चल ।
अङ्गविनिर्जित निर्मल हाटक ।
रङ्गविराजि मनोहर नाटक ।
शोधित दुर्मति दुष्कृति पुण्ड्रक !
गोधितलोज्ज्वल चन्दन पुण्ड्रक ।
धन्यमति प्रियवर्ग सुसञ्चित-
वन्यमनोहर-मालिकयाञ्चित ।
पामरतारक चारुकृपालय
नामरसप्रिय मामनुपालय ॥ देव॥८४

क्षिप्तोच्चण्ड-कपालखण्डदलित- श्रीपादमुण्डे सति
क्रोधाच्चक्रमधारयत् सरभसं यो माधवे घ्नन्नमुं ।

येन । हे वनमालि नामकस्य विप्रस्य तृप्तिद । यौवनशालिबधूषु धृतः दर्पकः कामो येन । तामरसस्य पद्मस्य द्युतिं कान्तिं हरतीति । चञ्चलौ च कामरसस्य समर्पण-कारिणौ च दृगञ्चलौ नयन-प्रान्ते यस्य । अङ्गेन विनिर्जितं निर्म्मलं हाटकं स्वर्णं येन । रङ्गविराजि रङ्गबहुलश्च मनोहरश्च नाटकं नृत्यं (दृश्यकाव्यभेद-विशेषो वा) यस्य । शोधिताः दुर्म्मतयश्च पुण्ड्रका म्लेच्छविशेषाश्च येन । गोधि-तले ललाटदेशे उज्ज्वलः चन्दनस्य पुण्ड्रः तिलकं यस्य । धन्यमतयाः ये प्रियवर्गाः तैः सुसञ्चिता च वन्या च मनोहरा च या मालिका तया अञ्चित सज्जित, पूजित वा । हे पामराणां नीचानां तारक ! नाम्नि यो रसः स एव प्रियो यस्य । मामनुपालय ॥८४॥ कलिकान्ते श्लोकमाह—क्षिप्तेति । माधवे क्षिप्तश्च उच्चण्डः प्रचण्डश्च यः कपालखण्डः खपुरस्तेन दलितं श्रीपादस्य नित्यानन्दस्य मुण्डं मस्तकं येन तस्मिन् सति यः क्रोधात् सरभसं तत्क्षणादेव अमुं घातुकं घ्नन् जिघांसन् चक्रम् अधारयत्—पुनः तस्मिन् माधवे शरणं प्रयाति एव तस्य दुष्कृतानां महापातकानां

दी है । वनमाली नामक ब्राह्मण को तुमने सुतृप्त किया है । यौवन शालिनी बधूवर्ग के हृदय में तुम कामार्पण करते हो, तुम्हारी चञ्चल कटाक्ष भङ्गी काम रस समर्पण में सुपटु है । तुमरङ्ग बहुल एवं मनोरम नाटक—नृत्य—अभिनय किये हो । दुर्म्मति एवं दुष्कृति पुण्ड्र नामक म्लेच्छगण को शोधन किये हो, तुम्हारे ललाट मैं चन्दन विरचित उज्ज्वल तिलक है, धन्यमति प्रिय जनगण कर्त्तृक प्रेम भर से आहृत वन्य मनोहर माल्य द्वारा तुम सुसज्जित हुये हो । तुम्हीं पमरजन तारण हो । असमोर्द्ध्व कृपा कारी नाम रस ही तुम्हारा प्रिय है । हे गौर ! मेरा पालन सर्वदा करो ॥८४॥ श्रीपाद नित्यानन्द के शिरोदेश में माधाइ कर्त्तृक निक्षिप्त प्रचण्ड कपाल खण्ड द्वारा क्षत होने पर उस को बध करने के निमित्त तत् क्षणात् चक्र धारण किये थे, एवं माधाइ शरण ग्रहण करने से

तस्मिन्नेव पुनः प्रयाति शरणं तद्दुष्कृतानां ततिं
यो जग्राह स दक्षिणोऽवतु सदा गौरस्य पाणि र्जगत् ॥८५॥
त्रासित मन्दर भासित सुन्दर-
गौरभ' वञ्जुल सौरभ मञ्जुल ॥ धीर ॥ ८६

(२२)

कृतगौरव गौर बन्धुभि र्ललितोदारक' दारकप्रिय ।
अनुकम्पय कम्पयश्चयक्षरणे मेघ नु मेऽघनुद्भव ॥ गुच्छः ॥८७
जयकनककेतकीनवकुसुमपत्रक-
व्रजविकचचम्पकद्युतिविजयी-गात्रक ।
स्फुटदरुणपद्मिनीकुसुमविजयोद्भट
प्रपद' नवयामिनीपतिजयिनखच्छट ।

ततिं यः जग्राह गृहीतवान्, गौरस्य स दक्षिणः पाणि र्बाहुः सदा जगत् पालयतु ॥८५॥
श्लोकान्ते विरुदं रचयति—त्रासितं मन्दरस्य भासितं प्रभा यया तादृशी सुन्दरी गौरी च भा कान्ति र्यस्य । यद्वा त्रासितः भीतः यो मन्दः जनः तं राति परिपातीति भासितं वाक्यं सुन्दरं यस्य । गौरी भा कान्ति र्यस्य । वञ्जुलस्य वकुलस्य सौरभः इव मञ्जुल मनोज्ञ ॥८६॥

(२२)

अथ मञ्जर्य्याः गुच्छ-कलिकारम्भे श्लोकमाह—कृतेति । नु भोः गौर ! जनेषु कृतं गौरवं येन । बन्धुभिः परिषदैः ललित सुन्दर-दर्शन । उदार एव स्वार्थे कन् । यद्वा उदारं कं मस्तकं सुखं वा यस्य । दारकाणां बालकानां प्रिय यद्वा दारका एव प्रिया यस्य । कं सुखमेव पयः तच्चयस्य क्षरणे मेघ अर्थात् सुखराशिवर्षुक, अनुकम्पय तथा मम अघनुत् पापनाशनः भव । श्लोकान्ते कलिकामाह—जयेति । सुवर्णकेतकीनां नवकुसुमानां पत्र समूह-विनिन्दि तथा प्रस्फुटित-चम्पककान्तिविजयि च गात्रं यस्य । स्फुटत् विकशच्च

माधाइ की पाप राशि को ग्रहण किये थे । गौर के दक्षिण हस्त ही जगत् की रक्षा सर्वदा करे ॥८५॥ तुम मन्दर पर्वत की प्रभा विजयी सुन्दर गौर वर्ण धारण किय हो, तुम्हारे अङ्ग से वकुल की सौरभ प्रसृत होकर मनोहरण कर रही है ॥८६॥

मञ्जर्य्या गुच्छ (२२)

हे गौर ! तुम सर्व को गौरव दान करते हो, बन्धु,—पार्षद वर्ग वेष्टित होकर तुम सुन्दर दर्शन हुये हो । तुम, उदार प्रकृति के हो, अथवा तुम्हारा मस्तक परम सुन्दर है, सुख भी तम्हारे परम प्रचुर है ! तुम बालकों का प्रिय हो, अथवा बालकगण तुम्हारे प्रिय हैं । तुम सुख राशि वर्षण से मेघसदृश हो । तुम अघनाश करतः मुझपर अनु कम्पा करो ॥८७॥ हे देव ! तुम्हारी जय हो, स्वर्ण केतकी नव कुसुम दल विनिन्दी एवं प्रस्फुटित चम्पक विजयी तुम्हारी अङ्ग कान्ति है । विकाशोन्मुख अरुण वर्ण पद्म विजयी सुन्दर चरण युगल तुम्हारे हैं । प्रशंसनीय चन्द्र जयी तुम्हारी नखच्छटा है । हस्ति शुण्ड

द्विरदकरसुन्दरोरुयुग' जगदुत्तम-
कृशिमसुबलित्रयीसुभगतम-मध्यम।
त्रिदशगृह भूधरप्रततररसत्तट
प्रविलसदुर:स्थल' द्विजपति सदृक् पट
द्वितयपरिशोभित' द्विपकर'-सुहृद्भुज'
प्रणयरस–माधुरी मधुर-वदनाम्बुज'
प्रकृति मधुरेक्षणो'न्नतरुचिरनासिक'
प्रचलदलिमण्डली ललिततम-कैशिक'
च्छुरितमणिमण्डनोज्ज्वल' कृपय रञ्जय
प्रभु-वृषभ! मामिमं विहितदुरितं जय॥ देव।८८
माल्यश्रीबलयित–दिव्यकेशजाल:
श्रीखण्डद्रवतिलकप्रकाशिभाल:।

अरुणञ्च यत् पद्मिनीकुसुमं तस्य विजयेन उद्भटं पराक्रमि प्रपदं पादतलं यस्य। नव: स्तवार्ह: यामिनीपतिश्चन्द्र स्तं जयतीति नखच्छटा यस्य। द्विरदस्य हस्तिन: कर: शुण्डा इव सुन्दरं ऊरुयुगं यस्य। जगति उत्तम: कृशिमा कृशता यस्य तच्च सुन्दरवली त्रितयेन सुभगतमं परममनोहरञ्च मध्यमं यस्य। त्रिदशानां देवानां वसतिस्थानं भूधर: पर्व्वतश्च सुमेरु-नामक स्तस्य प्रतततरं विस्तीर्णतरं यत् सत्तटं तदपि प्रविलसत् विलासमयमुर:स्थलं वक्षो यस्य। द्विज-पतिश्चन्द्र: तस्य सदृक यत् शुभ्रं पट–द्वितयं वस्त्रयुगं तेन परिशोभित। द्विपकर: हस्तिशुण्डा तस्य सुहृत् सदृश: भुज: यस्य। प्रणयरसस्य माधुर्य्येण मधुरं वदन-पद्मं यस्य। प्रकृत्या एव मधुरे ईक्षणे लोचने यस्य। उन्नता च रुचिरा च नासिका यस्य। प्रचलन्ती या अलिमण्डली भ्रमरसमूह: तया ललिततमं महासुन्दरं कैशिकं केशसमूहो यस्य। छूरिता: खचिता मणयो येषु तै र्मण्डनैरुज्ज्वल। हे प्रभु-वृषभ! महाप्रभो! इमं विहित-दुरितं दुष्कृति-निरतं मां कृपय, रञ्जय स्वपादपद्मसेवादानेन सन्तुष्टीकुरु। त्वं जय निरुपाधिकृपावर्षणेन सर्वोत्कर्षमाविष्कुरु ॥८८॥ कलिकान्ते श्लोकमाह– माल्येति। माल्यस्य श्रीभि: वलयितं वेष्टितं केशजालं यस्य। श्रीखण्डद्रवेण चन्दनेन यत् तिलकं तेन

वत् सुन्दर तुम्हारे ऊरुयुग हैं। त्रिभुवन में अनुपम कृशतायुक्त एवं सुन्दर त्रिबलिविभूषित तुम्हारा मध्यदेश है। देवगृह सुमेरु के विस्तीर्णतर अतिसुन्दर तटवत् विलासशील तुम्हारे वक्ष: स्थल है। चन्द्रवत् शुभ्र वस्त्रद्वय द्वारा तुम परिशोभित हो। हस्ति शुण्ड सदृश तुम्हारे भुजद्वय हैं, प्रणयरस माधुर्य्य द्वारा तुम्हारे वदन पद्म मधुर है। स्वभावत ही सुन्दर तुम्हारे लोचन द्वय हैं। नासिका उन्नत एवं मनोहर है। इतस्तत: सञ्चरण शील भ्रमर समूह से भी अतिसुन्दर तुम्हारे केश कलाप हैं। मणिगण खचित भूषण से तुम समुज्ज्वल हो, हे महाप्रभो! यह दुष्कृति निरत जन के प्रति कृपा करो एवं निज पाद पद्म सेवा प्रदान कर सन्तुष्ट करो। तुम जयशील होओ। अर्थात् अहैतुकी कृपा वर्षण पूर्वक सर्वोत्कर्षाविष्कार करो ॥८८॥ जिनके केश कलाप माल्य समूह के सौन्दर्य्य

गौरो मे मनसि यदि स्फुरेत् स पालः
किन्तर्हि प्रखरतरः करोतु कालः ? ॥८९

खर्व्वस्मितधर गर्व्वक्षयकर
सर्व्वक्षणमय' सर्व्वस्तुत' जय ॥ धीर ॥९०

(२३)

निःसारयन् दुरितदुष्टमृगानशेषान्
संत्रासयन्नतिबलं कलि-कुञ्जरं द्राक् ।
त्रैलोक्य-काननतले विजयं करोति
श्रीगौरसिंह तव कीर्त्तन-दिव्यनादः* ॥ कुसुमं ॥९१॥

दुरित निवहदहन-मुदिर' कुमति तिमिर निकर मिहिर ।
भजन रसन सलिल जलद' विबुध हृदय लसित फलद !

प्रकाशि उज्ज्वलं भालं ललाटं यस्य स पालः पालकः गौरः यदि मे मनसि स्फुरेत्, तदा प्रखरतरः कालः किं करोतु ? सर्व्वप्रभौ गौराङ्गे स्फुरति न कस्मादपि भीति विद्यते नाम ॥८९॥ श्लोकान्ते विरुदं रचयति—खर्व्वेति । खर्व्वं मृदु स्मितं मधुरहास्यं तत् धरति प्रकाशयतीति । गर्व्वस्य क्षयकर । सर्व्वक्षणमय सर्व्वोत्सवपरायण । सर्व्वैं र्जनैः सर्व्वेण महादेवेन वा स्तुत । जय ॥९०॥

(२३)

अथ कुसुम—कलिकारम्भे श्लोकमाह— निःसारेति । हे श्रीगौर-सिंह ! तव कीर्त्तन-दिव्यनादः त्रैलोक्यमेव काननतलं वनप्रदेश स्तस्मिन् विजयं करोति । किं कुर्व्वन्—अशेषान् दुरित-दुष्टमृगान् पापिरूप-दुष्टपशून् निःसारयन् दूरीकुर्व्वन् तथा अतिबलं महाबलं कलिरेव कुञ्जरः हस्ती तं संत्रासयन् ॥९१॥ श्लोकान्ते कलिकामाह—दुरितेति । दुरितानां पापानां निवहः समूह एव दहनः अग्नि स्तत्पक्षे मुदिर मेघ । कुमतिरेव तिमिरनिकरः अन्धकार-पटलं तत्पक्षे मिहिर सूर्य्य । भजनरसेन भजनास्वादने एव सलिलं तद्विषये

से सुशोभित हैं । जिनके ललाट देश चन्दन निर्मित तिलक समूह के द्वारा उज्ज्वलीकृत है, वह प्रभु श्री गौराङ्ग यदि मेर मानस मुकुर में स्फुरित होते हैं तो प्रचण्डतर काल ही मेरा क्या करेगा ? ॥८९॥ तुम्हारे मुख में मृदु मधुर हास्य विद्यमान है । तुम गर्व नाशन हो, तुम सर्व उत्सव मय हो, एवं सकल लोक अर्थात् महाहव तुम्हारा स्तव करते हैं । तुम्हारी जय हो ॥९०॥

कुसुम (२३)

हे गौर सिंह ! पापि रूप दुष्ट पशु समूह को रविदूरित करके एवं महाबलवान कलिरूप हस्ती को आशु सन्त्रासित कर तुम्हारे कीर्त्तन रूप सिंहनाद त्रैलोक्य रूप वन मध्य में विजय प्राप्त कर रहा है ॥९१॥ पापानल निर्वापण में तुम मेघ सदृश हो । कुमति रूप अन्धकार विनाशन में सूर्य्य हो, भजनास्वादन रूप जल के पक्ष में मेघ हो, पण्डित वृन्द के हृदयाभीष्ट प्रदान हेतु कल्पवृक्ष हो, पृथिवी के सुखदान कारी चरण

धरणि सुखद चरणयुगल' सुरुचिविजित विकच कमल ।
विमल रजनिरमण नखर किरण दमित तिमिर-विसर ।
कुमुददयित विजयि वदन' नयन चलन जनित मदन ।
विलसदलिक सुभगतिलक' मधुपविततिविचलदलक ।
चिकुर-विजित चमर विसर' करुण नयनमिह नु वितर ॥ देव ॥६२

श्रीश्रीनिवासदयितः स सर्व्वचक्षुःश्रवः सुखकृत् ।
विनतानन्दनवर्द्धी गौरो द्विजमणिरहो भाति ॥६३॥

अमरह्लदिनीकुलग' वनिता धृतिहृत्सौरग'
निजनामघटागायक' भजनामृत-सन्दायक ॥ धीर ॥ ६४

जलद मेघ । विबुधानां पण्डितानां हृदये लसितमभीष्टं फलं ददातीति । धारण्याः सुखदं यत् चरणयुगलं तस्य सुष्ठु रुच्या कान्त्या विजितं विकचं प्रस्फुटितं कमलं येन । विमलो यो रजनिरमणश्चन्द्रः तादृशैः नखराणां किरणैः दमितः न्यक्कृतः तिमिराणां अन्धकार-राशीनामपि विसरः विस्तारो येन । कुमुद-दयितश्चन्द्र स्तं विजयते इति तादृक् वदनं यस्य । नयन-चलनैः कटाक्ष-भङ्गिभिः जनितः मदनो येन । विलसत् सुन्दरं यत् अलिकं ललाटं तस्मिन् सुभगं मनोहरं तिलकं यस्य । मधुपविततिः भ्रमर-समूह एव विचलन्तः इतस्ततः सञ्चालनपराः अलकाः कुञ्चितकुन्तलाः यत्र । चिकुरैः केशसमूहैः विजितः चमरस्य चामरस्य विसरः प्रचारः समूहो वा यस्य । नु भो गौर ! इहास्मिन् जने करुण-नयनमर्पय ॥६२॥ कलिकान्ते श्लोकमाह—श्रीति । अहो ! स गौरः द्विजमणिः द्विजवरः, पक्षे गौरवर्णो गरुड़ः भाति प्रकाशते । किम्भूतोऽसौ—श्रीनिवासो भक्तचूड़ामणिः, नारायणश्च तस्य दयितः प्रियः । सर्व्वजनानां चक्षुषोः श्रवणयोश्च सुखकरः पक्षे सर्वेषां सर्पाणां सुखच्छेत्ता । विनतानां नम्राणां पक्षे विनतायाश्च आनन्दवर्द्धनकारी च ॥६३॥

श्लोकान्ते विरुदं रचयति—अमरेति । अमरह्लदिनी गङ्गा तस्याः कूले गमन-कारिन् । वनितानां धृतिहृत् धैर्य्यविनाशि सौभगं सौन्दर्य्यं यस्य । निजस्य नामघटानां नाम-समूहानां गानकारिन् । भजनामृतस्य सम्यक् दानकारिन् च ॥६४॥

युगल की सुन्दर कान्ति से तुम प्रस्फुटित कमल को भी पराजित किये हो । विमल चन्द्रमावत् शुभ्र नखर किरण जाल द्वारा तुम घोरतर अन्धकार राशि को विनष्ट किये हो, तुम्हारा वदन, चन्द्र को भी पराभूत किया है । कटाक्ष भङ्गी के द्वारा तुम कोटि कोटि कामदेव को उत्पन्न करते रहते हो । तुम्हारे सुन्दर ललाट में मनोमद तिलक विद्यमान है, मधुकर समूहवत् इतस्ततः सञ्चरमाण कुञ्चित कुन्तल शोभित है । केशदाम भी चामर शोभा को पराजित किया है । हे गौर ! यह मादृश व्यक्ति के प्रति एकबार करुण नयनार्पण करो ॥६२॥ अहो ! श्रीश्रीनिवास प्रिय, सकल जन के चक्षु कर्ण का आनन्द जनक एवं प्रणत जन का सुख वर्द्धक द्विजमणि गौर सुन्दर विराजित हैं । पक्ष में- अहो ! श्रीनारायण के प्रिय, सकल सर्प का सुख नाशक एवं विनतानन्दन गौरवर्ण पक्षिराज गरुड़ विराजमान हैं ॥६३॥ गङ्गातीर में विहार परायण तुम हो, तुम्हारा सौन्दर्य्य वनितावृन्द का धैर्य्य नाश करता है । निजनामावलि का गान स्वयं ही करते हो,

(२४)

कुवलयमदः प्रकामं स्वस्योदयतो विदार्य्यते तेन ।
मदयन् स पुण्डरीकं गौरशरीरो हरि र्जीयात् ॥६५॥
नीरागा अपि रागं निर्दर्पा अपि सदर्पकतां ।
गौर ! जना स्त्वत्कृपया निर्माया अपि समायतां यान्ति ॥६६

त्रिभङ्ग्यां दण्डकत्रिभङ्गी

जहति भवभयं स्मरन्तो जपन्तो गृणन्तो नमन्तोऽ
र्च्चयन्तो भजन्तो धियन्तो मृशन्तः स्पृशन्तोऽपि यं ।
यदधिकरणकं कृशत्वं बृहत्वं महत्त्वं सहत्वं
बुधत्वं शुभत्वं सुसत्त्वं समत्वं मृदुत्वं वरं ॥
तमशुभदहनादवन्तं त्रसन्तं भवन्तं मुदन्तं
व्रजन्तं नमन्तञ्च सन्तं पतन्तं जनं ।

---

(२४)

अथ त्रिभङ्गीवृत्ताख्य-महाकलिकारम्भे श्लोकद्वयं रचयति– कुवलयेति । स्वस्य उदयतः कुवलयस्य भूमण्डलस्य मदः मत्तता पक्षे अदः कुवलयं कैरवं येन विदार्य्यते विनाश्यते पक्षे प्रकाश्यते स गौरशरीरः पीतवर्णः पक्षे अरुणवर्णः हरिः कृष्णः पक्षे सूर्य्यः पुण्डरीकं तन्नाम भक्तवर्य्यं पक्षे पद्मं मदयन् आनन्दयन् जीयात् जयतात् ॥६५॥ हे गौर ! त्वत्कृपया नीरागा अप्रेमिका अपि रागं प्रेमाणं, निरहङ्कारा अपि सद्वस्तुनोऽर्पकतां तथा निर्माया गतमोहा अपि कृपालुत्वं यान्ति । यथाश्रुतार्थे विरोधः, तत्परिहास-पक्षे व्याख्यात्र द्रष्टव्या ॥६६॥ अथ **दण्डकत्रिभङ्गि**-कलिकामाह— जहतीति । यं स्मरन्तः इत्यादि भवभयं जहति परित्यजन्ति । गृणन्तः उच्चैः कीर्त्तयन्तः । भजन्तः परिचरन्तः । धियन्तः ध्यानं

भजनामृत का दान भी तुम सम्यक् प्रकार से करते हो ॥६४॥

दण्डकत्रिभङ्गी (२४)

जिनके उदय से त्रिभुवन की मत्त्रता सम्यक् प्रकार से विनष्ट ही गई है । एवं जिन्होंने पुण्डरीक नामक भक्तवर्य्य के उन्मत्त किया है । वह गौर वर्ण श्रीहरि ही जय शील हो । पक्ष में—जिनके उदय से सरोवरस्थ कुवलय— कैरव राशि की शोभा सम्पत्ति सम्यक् विनष्ट हो गई है । एवं पुण्डरीक पद्म श्रेणी का विकास से आनन्द वृद्धि हुई है । वह अरुण वर्ण सूर्य्य प्रकाशित हो रहे हैं । ६५॥

हे गौर ! तुम्हारी कृपा से अप्रेमिक जनगण भी प्रेम, दर्पहीन, निरहङ्कार व्यक्ति गण भी सदर्पकता— सद् वस्तु समर्पण करने की योग्यता, एवं निर्माया मोह शून्य जनगण भी कृपालुत्व को प्राप्त करते हैं ॥६६॥ हे गौर हरि ! जिन्होंने तुम्हारा स्मरण, जप, उच्चैः स्वर से कीर्त्तन, नमस्कार, अर्च्चन, परिचर्य्या, ध्यान, विचार एवं स्पर्श किया है । उन को क्या भवभय रहता है ? कृष्ण वियोग से कृशत्व, स्फूर्त्ति से स्थूलत्व, एवं महत्त्व,

मनसिज-निकरात् सुकान्तं प्रशान्तं सुदान्तं
महान्तं नितान्तं विभान्तं नतान्तं सुपान्तं स्तः ।
निजभजनरसं ददानं सदानन्तमानन्दगानगानन्दधानं
समानं प्रधानं विधानं निधानं श्रियां ।
शरणमहमये भवन्तं सुदन्तं सदन्तं दृगन्तं नुदन्तं
स्तुवन्तं द्विषन्तञ्चेतन्तं नयन्तं मुदं ।
भवसलिलनिधावसारेऽप्यपारे व्यथारे
भयारेजकारेऽसि तारेश-वारेड्यहारेद्धभाः
निपतितमव मां महेशामरेशार्च्चयवेशाढ्यकेशा
ऽतिपेशास्य' मेशाऽङ्घ्रिलेशाभिदेशादिमं ।।९७
स्वनामगुणमाधुरी-हृदयहारिगानामृतै

कुर्व्वाणाः मृशन्तः विचारयन्तः । यदधिकरणकं यस्मिन् जने । सहत्वं सहिष्णुता त्रसन्तं भवन्तं सन्तमित्यर्थः पतन्तं दण्डवत् प्रणतं । सतः साधुजनान् सुष्ठु पान्तं परिपालन-कारिणं । श्रियां लक्ष्मीणाम् निधानं बीजं । शरणं अये गच्छामि । दृगन्तं कटाक्षं नुदन्तं प्रेरयन्तं । चेतन्तं चिन्तनशीलं । व्यथां राति ददातीति कष्टप्रदे । भयारेजकाणां भय प्रकाशकानां अरे, यद्वा भयारेजं करोतीति तस्मिन् । तारेशाणां चन्द्राणां वारेण वृन्देन ईड्यो स्तुत्यो यो हारः तेन ईद्धा दीप्ता भा यस्य सः असि । महेशः शिवश्च अमरेशः इन्द्रश्च ताभ्यां अर्च्चयः वेशो नेपथ्यं यस्य । आढ्यः समृद्धः महाश्रीसम्पन्नः इति यावत् केशो यस्य अतिपेशास्य अति सुन्दरमुख । मायाः लक्ष्म्याः शोभाया वा ईश, अङ्घ्रिलेशस्य पदलेशस्य रजसः इत्याक्षेपात् अभिदेशात् दानात् मां अव रक्षतात् ।।९७।। कलिकान्ते श्लोकमाह—

विष्णु, सहिष्णुता, पाण्डित्य, माङ्गल्य, अत्युत्तम बल अथवा स्वभाव, समता, मृदुता प्रभृति गुण समूह विद्यमान तु हमारे में हैं । अशुभानल से दन्दह्यमान मानव को तुम भय सन्त्रस्त चित्त से रक्षा करके परमानन्दित होते है । एवं दण्डवत् प्रणत साधु जनको तुम भी प्रणाम करते हो । कोटि कोटि कन्दर्प से भी तुम अधिकतर सुन्दर हो, अति प्रशान्त हो, विजितेन्द्रिय, महाशय, सातिशय दीप्ति शील, विनयी श्रेष्ठ एवं साधुवृन्द का महापालक हो । निज भजन रस दाद कारी हो, अनन्त एवं सर्वदा आनन्दमय सङ्गीत कारी, समान, प्रधान एवं सर्वलक्ष्मी का नियामक एवं आस्पद तुम ही हो । सुदन्त, सत् शिरोमणि, सज्जनों का चरम लभ्य, एवं कटाक्ष क्षेपक तुम ही हो । शत्रु को भी स्तब्ध करते हो, चिन्तनशील एवं आनन्द दायक तुम हो, मैं तुम्हारी शरण में आया हूँ । असार अपार, व्यथा पूर्ण, भय बहुल एवं उद्वेगमय संसार समुद्र में मैं निपतित हूँ, मेरी रक्षा करो, चन्द्र वृन्द विनिन्दी हार की दीप्त प्रभासे उद्भासित तुम हो, तुम्हारी वेश की अर्च्चना इन्द्रादि देवगण करते हैं । तुम्हारे केश कलाप की कैसी सुषमा है ! तुम्हारे मुख सौन्दर्य की तो तुलना हो नहीं है । हे लक्ष्मीपति ! अथवा हे शोभानिधान ! तुम्हारे पाद पद्म की एकरजः कणा के द्वारा भी मेरी रक्षा करो ।।९७।। हे शचीनन्दन ! तुम्हारे नाम गुण

रतीव परितर्पयन् सुजनहृच्चकोरोत्करं ।
तमस्तिमिर-सन्ततीस्तु तरयं स्त्विषा निर्भरं
शचीतनय ते मुखामृतरुचि र्मुदं प्रातु मे ॥९८॥
साधु-परमार्त्तिहर' पद्मवररम्यकर ।
पापिचय-याम्यभय-नाशिदय गौर जय ॥ धीर ॥९९॥

(२५)

चरण-चलनलक्ष्मी—कम्पिताशेष—गोत्रं
भुज-करिवरशुण्डान्दोलनाधूनिताशं ।
अमृतमदहर-श्रीनामसंकीर्त्तनाढ्यं
जगदवतु तवैतन्नर्त्तनं गौरचन्द्र ॥ विदग्धत्रिभङ्गी ॥१००
गङ्गातटवर रङ्गाहित-नर
रङ्गा' श्रितपदकिङ्कर-शङ्कर ।

स्वनामेति । हे शचीतनय ! स्वस्य नाम च गुणश्च माधुरी च हृद हारिमानामृतं च तैः करणैः सुजनहृन्द्य व चकोरा स्तेषां उत्करं समूहं अतीव परितर्पयन्— स्वस्य त्विषा अङ्ग-कान्त्या तु तमः अज्ञानमेव तिमिरं तस्य सन्ततीः राशीः तरयन् उत्तारयन् तव मुखमेव अमृतरुचिः चन्द्रः मे मुदं आनन्दं प्रातु पूरयतु विस्तारयतु वा ॥९८॥ श्लोकान्ते विरुदं रचयति—साध्विति । साधोः परमां आर्त्तिं हरतीति । पद्मवरादपि रम्यः करः यस्य । पापिचयानां याम्यभयं यमाद् भीतिं नाशयतीति तथाभूता दया कृपा यस्य हे गौर ! जय सर्वोत्कर्षमाविष्कुरु ॥९९॥

(२५)

अथ विदग्धत्रिभङ्गी--कलिकारम्भे श्लोकमाह—चरणेति । हे गौरचन्द्रः ! तव एतन् नर्त्तनं जगत् अवतु रक्षतु । किम्भूतं तत्—चरणयोः चलनस्य लक्ष्म्या शोभया कम्पिताः अशेषा निखिला गोत्राः पर्व्वता यत्र । भुज एव करिवरस्य शुण्डा तस्या आन्दोलनेन धूनिता विचलिता आशा दिशः यत्र । ममृतस्य मदं हरतीति तथाभूतं श्रीनाम-संकीर्त्तनं तेन आढ्यं संयुक्तं च ॥१००॥ श्लोकान्ते कलिकां रचयति—गङ्गेति । गङ्गायाः

की माधुरी एवं हृदय हारी गानामृत वर्षण के द्वारा सुजन वृन्द के हृदय चकोर समूह को समधिक आनन्दित करके एवं अङ्ग कान्ति के द्वारा अज्ञान तमः समूह को सुदूर में दूरीकृत करके तुम्हारे मुखचन्द्र आनन्द विस्तार करते रहे ॥९८॥ तुम साधु वृन्द के परम दुःख विनष्ट करते हो । तुम्हारे कर कमल अत्युत्तम पद्म से भी अधिक सुन्दर हैं । पापि गण का यमभय निवारण करो । हे गौर ! मुझ को दया करो, तुम्हारी जय हो ।९९

विदग्ध त्रिभङ्गी (२५)

हे गौरचन्द्र ! तुम्हारे चरण चालन की शोभा से निखिल पर्वत निवह कम्पित होते हैं, भुजरूप करिबर शुण्ड के सञ्चालन से दशदिक् विचलित होते हैं, अमृत गर्व नाशन श्रीनाम सङ्कीर्त्तन बहुल तुम्हारे नर्त्तन जगत् की रक्षा करे ॥१००॥ गङ्गा के

पङ्काकुलजन-शङ्काभयहर'
रङ्कात्मक-कलिवारणदारण ।
सन्धारितदृढ़ सन्धातुलशुभ
गन्धाढ्य कुसुमसज्ज' नमज्जन । (रुन्धर शन्धर) ।
सम्पाककुसुम शम्पाधिकरुग
ऽलम्पापहर' विलक्षण लक्षण ।
धर्म्मोद्यतजन-वर्म्मोपम' शुभ
कर्म्मोदय' ललितालकभालक ।
विद्यावित मुद विद्यामदहर ।
विद्याश्रितपद तामरसा' मर
तन्त्वामहमिह मन्त्वायतरुग'
हन्त्वावृतमतिरुत्तमवित्तम ।

तटवर एव रङ्गः नृत्यमञ्च स्तस्मिन् आहिताः कृताः नराणां रङ्गाः कौतुकानि येन। आश्रितपदानां किङ्कराणां शं मङ्गलं करोतीति । पङ्केन कलिकल्मषेण आकुलानां जनानां शङ्कां भयञ्च हरतीति । रङ्कात्मकस्य मन्दस्वभावस्य कलेः पक्षे वारणः हस्ती इव दारण विदारणकारिन् । सन्धारिता सम्यक् कृता दृढ़ा निश्चयात्मिका सन्धा प्रतिज्ञा मर्य्यादा वा येन । अतुलानि शुभानि च यानि गन्धाढ्यानि सुगन्धीनि कुसुमानि तैः सज्जा शोभा यस्य । नमन्तो जना यं । सम्पाककुसुमञ्च शम्पा विद्युच्च तेभ्योऽपि अधिकं रुक् कान्ति र्यस्य । अलं सातिशयं पापं हरतीति । विलक्षणानि असाधारणानि लक्षणानि यस्य । धर्म्मे उद्यतानां जनानां सम्बन्धे वर्म्मोपम सर्व्वथा रक्षकेति भावः । शुभकर्म्मणि उदयः चेष्टा यस्य । ललिता मनोहरा अलका कुञ्चितकुन्तला यत्र तादृशं भालं ललाटं यस्य । विद्याविता विद्राविता मुद् यया तस्या अविद्याया मदं हरतीति । यद्वा विद्यानां चतुःषष्टि-कलानामविते रक्षणे मुदानन्दं यस्य एवं अविद्यायाः मायायाः मदहर । विद्यया आश्रितं पदतामरसं पादपद्मं यस्य । आमं रोगं राति गृह्णातीति प्रतिकरोतीति वा, वासुदेवादौ तथा दर्शनात् । हे उत्तमवित्तम परमज्ञानितम ! इह जगति अहं मन्तुना अपराधेन आयता

उत्कृष्ट तट रूप नृत्य स्थल में तुम मनुष्यानन्दद लीलाविनोद किये हो, तुम चरणाश्रित भृत्य का परममङ्गल साधन करते हो । कलिकल्मष से व्याकुल चित्त नरवृन्द के शङ्का-भयादि विदूरित करो । मन्द स्वभाव कलिके पक्ष में हस्तिवत् विदीर्ण कारी तुम हो, तुम दृढ़ प्रतिज्ञ अथवा अचल मर्य्याद हो, अतुल शुभ गन्धयुक्त कुसुम समूह द्वारा तुम्हारी सज्जा खचित है । सब लोक तुम को नमस्कार कर रहे हैं । सुवर्ण पुष्प एवं विद्युत् से भी अधिक कान्ति विशिष्ट तुम हो, समस्त पाप राशि का विनाशक तुम हो, विलक्षण—प्रातिशत् लक्षणान्वित तुम हो । धर्माचरण में उद्यत जन गण के पक्ष में वर्म्म सदृश—सर्वथा रक्षक, तुम हो । सतत शुभ कर्म में ही तुम्हारे चेष्टा है । तुम्हारे ललाट में कुञ्चित कुन्तल राजि परम मनोहर दृष्ट हो रही है । आनन्द विनाशन अविद्या का मद हरण

वन्दे शुभकर मन्दे मयि ननु
शन्देवय परिचारकतारक ॥ धीर ॥ १०१॥

बाहू विभ्रदरालवारणवुषा-विस्फार-विभ्राजितौ
वक्त्रं विस्मयवर्द्धनं वत विधो र्वाणीं विधूतव्यथां ।
व्यालोलेन विलोचनेन वलितो वासो वसानो वरं
विश्वेषां विदधातु विश्वविदितो विश्वम्भरो वाञ्छितं ॥१०२

मिश्रपुरन्दर देहजात ।
विश्रुत सुन्दरकेलिजात ।
नन्दित सज्जन चारुशील ।
मन्दित दुर्जन वारलील ॥ धीर ॥ १०३॥

(२६)

रुग् रोगो यस्य तादृश: तथा अहन्त्वया गर्व्वेण आवृतमति: आच्छन्नबुद्धि: च सन् तं प्रसिद्धं सद्वैद्य-चूड़ामणि त्वां वन्दे नमस्करोमि स्तवीमि वा । ननु भो: शुभकर ! परिचारकाणां भृत्यानां तारक ! मन्दे मयि शं कल्याणं सुखं वा प्रकाशय ॥१०१॥

कलिकान्ते श्लोकमाह—बाहू इति । विश्वविदित: सर्व्वत्र विख्यात: विश्वम्भर: विश्वेषां सर्वेषां वाञ्छितं अभीष्टं विदधातु । करोतु । कीदृगसौ—अरालाया वक्रीभूताया वारणवुषाया: कदल्या: विस्फारेण विस्तारेण विभ्राजितौ सुन्दरौ बाहू, चन्द्रस्य विस्मय-वर्द्धनं वदनं—विधूता विकम्पिता व्यथा यया तादृशीं वाणीं च विभ्रत्, व्यालोलेन चञ्चलायमानेन नेत्रेण वलित: युक्त: तथा वरं उत्तमं वास: वसान: धारयन् च ॥१०२॥

श्लोकान्ते विरुदं रचयति—मिश्रेति । जगन्नाथात्मज । विश्रुतानि विख्यातानि च सुन्दराणि च केलिजातानि विलाससमूहा यस्य । नन्दिता: सज्जना येन एतादृशं चारु शीलं स्वभावो यस्य । मन्दिता मन्दीकृता दुर्जनानां वारा: समूहा: यया सा लीला यस्य ॥१०३॥

कारी तुम हो, अथवा चतु: षष्टि कला का रक्षण विषय में आनन्दित तुम अतिशय होते हो एवं अविद्या का गर्व ध्वंस करते हो । सर्वविद्या तुम्हारे पाद पद्म को आश्रयकर वर्त्तमान हैं । वासुदेवादि का आम 'रोग' विनष्ट तुमने ही किया है । हे परम ज्ञानितम: ! इस जगत् में मैं अपराध से चिरपीड़ित हूँ, एवं अहङ्कार के द्वारा आच्छन्न बुद्धि होकर सद् वैद्य चूड़ामणि तुम्हारा स्तव कर रहा हूँ । हे कल्याण मय ! हे भृत्य तारक ! मन्द मति मुझ को सुखदान करो ॥१०१॥ तुम्हारे बाहु युगल पूर्णरम्भा की विस्तृति विड़म्बी हैं । तुम्हारा वदन, चन्द्र का भी विस्मयापादक है, तुम्हारा वाक्य सर्व दु:खाप हारक है, नेत्र युगल चञ्चलायमान है । परिधान में अत्युत्कृष्ट वस्त्र है । विश्वविदित विश्वम्भर विश्ववासी को वाञ्छितार्थ प्रदान करो ॥१०२॥ मिश्र पुरन्दर का आत्मज तुम हो । तुम्हारे सुन्दर सुन्दर केलि समूह विख्यात है । तुम्हारे चारु चरित्र से साधुगण आनन्दित होते हैं । तुम्हारी लीला से दुर्ज्जन समूह भी मन्दित अर्थात् पाप क्रिया विरत हुये हैं ॥१०३॥

त्वद्भक्तनिन्दनकरं चपलं गदाढ्यं
गोपालकं समनुकम्प्य समुद्दधर्थ ।
विश्वम्भरातुलकृपालय हन्त तत्तद्
दोषान्वितं कथमिवेममुपेक्षसे मां ।। १०४
गाङ्गेयामलकान्ते गां गेयामलमभीष्टदां बिभ्रत् ।
दामो दरं मम त्वं दामोदर-सुहृदिह स्म किं प्रेम ।।१०५

मिश्रकलिका

जय जगदीश जगन्नाथजनन' जननयनासेचक'
गर्गकथित-कलिमध्यसमुद्भव' भर्गरचित परिशुद्ध बहुस्तव ।
स्तवनीय' वनीयकभूसुपर्व्व-पर्व्व-पर्व्वक ।
भक्तिव्यक्ति-प्रमथित कलिबल' भक्तत्यक्त प्रणय सदृश फल ।
सर्व्वदोषरहित' जातरूपतरूपमदेह'
सुरम्य पल्लव प्रमर्द्दि पल्लव' प्रबललोचनताप निवारण

अथ मिश्र-कलिकारम्भे श्लोकद्वयमाह—त्वदिति । चपलं चञ्चलं । यद्वा चपल-गोपालेति नामकं । गदाढ्यं रोगसुक्तं । तत्तद्दोषान्वितं त्वद्भक्तनिन्दाकरमित्यादि अन्यत् स्पष्टम् ।।१०४।। गाङ्गेयं सुवर्णं तस्मादपि अमला विशुद्धा कान्ति र्यस्य हे तथाभूत ! उ हे दामोदरस्य स्वरूपस्य सुहृत् ! त्वं अलमभीष्टदां सातिशय-वाञ्छित-दायिकां गेयां प्रशस्यां गां वाचं बिभ्रत् वदन् इह देशे काले वा मम मह्यं दरं मनागपि प्रेम मा स्म दाः किं ? उ सम्बोधने ।। १०५ ।। अथ मिश्र कलिकां रचयति—जयेति । जगन्नाथात् जननं जन्म यस्य । जननयनानां आसेचक सम्यक् तृप्ति–विधायक । "तदासेचनकत्वं तृप्ते र्नास्त्यन्तो यस्य दर्शनात् ।" गर्गेण कथितः कलिमध्ये समुद्भव, प्रादुर्भावो यस्य : "आसन् वर्णा स्त्रयो ह्यस्येति" श्रीदशमात् भर्गेण शिवेन रचिताः परिशुद्धाः बहवः स्तवाः यस्य । वनीयकस्य याचकस्य भुसुपर्व्वणः ब्राह्मणस्य पर्व्वपर्व्वक उत्सव-पूरक, भक्तेः व्यक्त्या

मिश्रकलिका (२६)

हे अतुलनीय कृपा समुद्र ! हे विश्वम्भर ! तुम्हारे भक्त निन्दुक महाव्याधिग्रस्त चापाल गोपाल को भी सम्यक् कृपा वितरण पूर्वक रोगमुक्त कर उद्धार किये हो, हाय !! उक्त दोष युक्त मेरी उपेक्षा क्यों करते रहते हो ? ।।१०४।। हे स्वर्ण विनिन्दि कान्ति धारिन् ! हे दामोदर सुहृत् ! अतिशय वाञ्छित पूरक प्रशंसनीय वाक्य कहते कहते यहाँपर अथवा इस क्षण में मुझ को क्या बिन्दुमात्र भी प्रेमदान नहीं करोगे ? ।।१०५।।

हे जगदीश ! हे जगन्नाथ नन्दन ! तुम्हारे दर्शन से लोक लोचन तृप्ति की पर्य्याप्ति नहीं होता है । श्रीमद् भागवतकी श्रीगर्गोक्ति आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः के अनुसार तुम कलियुग में ही आविर्भूत हुये हो । शिव,तुम्हारे बहुविधस्तोत्र की रचना किये हैं । तुम प्रशंसनीय भी हो । अथवा प्रशंसनीय याचक ब्राह्मण की उत्सव पूर्त्ति भी

वारणवुषा सदृशोरुयुगल । जठर सुभाण्ड भ्रमदखिलाण्ड ।
प्रकृष्ट फलक सदृश विशङ्कट कटितट विलसितसितवसन-शोभित ।
सिंहमदक्षय मध्यबलित्रय' श्रेणीभूत भ्रमर-भ्रमर-
रोमाबलि बलित' रञ्जित युवति-कदम्बक'
नन्दित सकल हृदबम्क । विशाल वक्षः स्थल-विराजमान-
वनमाल । द्विरदोत्तमकर समदोर्द्वयधर । कमलिनी-
मलिनीकरणकटुकरयुग विद्योतमान । विमलशिखर-
मणिसञ्चय-समनख । शशधरमद-परिलुञ्चन-पटुमुख ।
पवनाशन नाशन नासिकापुटा' धराधरायित बन्धुजीव'

प्रकटनेन दानेन वा प्रमथितं कलिबलं येन । भक्तेभ्यः त्यक्तं दत्तं प्रणय-सदृशं फलं येन । जातरूपं स्वर्णमेव तरुः वृक्ष स्तत् सदृशं देहं यस्य । सुरम्यं पल्लवं किशलयं प्रमर्द्दयति विजयते इति तादृक् पदो लवोऽपि यस्य । प्रबलो यो लोचनतापः तस्य निवारक । वारण-वुषायाः कदल्याः सदृशं ऊरुयुगलं यस्य । जठरमेव सुष्ठु भाण्डं तस्मिन् भ्रमन्ति अखिलानि ब्रह्माण्डानि यस्य । प्रकृष्टं अत्युत्कृष्टं यत् फलकं तत् सदृशं यत् विशङ्कटं विशालं कटितटं तस्मिन् विलसितं सुरम्यं यत् सितवसनं शुभ्रवस्त्रं तेन शोभित । सिंहस्य मदक्षयो यस्मात्तादृशे मध्ये वलित्रयं यस्य । श्रेणी भूताः ये भ्रमराः तेषां भ्रमं भ्रान्ति राति ददातीति या रोमावलिः तया बलित युक्त । रञ्जितं सन्तोषितं युवतीनां कदम्बं समूहः येन । नन्दितं सकलानां हृत् च अम्बकं नयनं च येन । द्विरदोत्तमस्य हस्ति-प्रवरस्य करस्य समं दोर्द्वयं बाहुयुगं धरतीति । कमलिनीनां पद्मानां मलिनीकरणे पटु यत् करयुगं तेन विद्योतमान । विमलः शिखर-मणिः माणिक्य-भेदः तस्य सञ्चयः समूहः तत्समाः नखाः यस्य । शशधरस्य चन्द्रस्य मदस्य रूप-गरिम्नः परिलुञ्चने चौर्य्ये पटु मुखं यस्य । पवना-शनस्य सर्पस्य नाशनो गरुड़ः तस्य नासिका-पुटमिव नासिकापुटं यस्य । अधरेण ओष्ठपुटेन अधरायितं न्यक्कृतं वन्धुजीवं येन । नयनयो सुभङ्गेन ग्लपितः ग्लानि-प्राप्तः कुरङ्गो येन । प्रकाण्डं यत् कामस्य कोदण्डं चापं तस्य दर्पदलनं चिल्लीयुगलं भ्रयुग्मं यस्य । कचैः

किये हो। भक्ति प्रकटन द्वारा तुमने कलि बल को उत्तम रूपसे खर्व किया है। भक्तवृन्द को प्रीति के अनुसार प्रेम फल दान करते हो। तुम सर्व दोष शून्य हो। तुम्हारा देह-सुवर्ण वृक्ष सदृश है। तुम्हारे चरण के एक लबलेश भी सुरम्य पल्लव की शोभाराशि को पराजित करता है। तुम लोचन का प्रचण्डताप को विदूरित करते हो। कदली काण्ड सदृश तुम्हारे ऊरु युगल हैं। तुम्हारे उदर रूप भाण्ड में अखिल ब्रह्माण्ड भ्रमण कर रहें हैं। अत्युत्कृष्ट फलक-सदृश विशाल कटि देश में, सुन्दर श्वेत वस्त्र द्वारा तुम्हारी शोभा वर्द्धित हुई है। सिंह के गर्व विनाशन तुम्हारे मध्यदेश में त्रिबलि विद्यमान है। श्रेणीभूत भ्रमर निकर की भ्रान्तिद रोमावली द्वारा मण्डित हो। तुम्हारे साहचर्य्य में युवतीवृन्द परमानन्द प्राप्त करती हैं। तुम सब के हृदय एवं नयनानन्द प्रद हो। तुम्हारे विशाल वक्षोदेश में वनमाला विद्यमान है। हस्तिप्रवर के शुण्ड सदृश तुम्हारे बाहु युगल हैं। पद्म राशि के निन्दाकारी कर युगल शोभा विस्तार कर रहे है। विमल 'शिखर' नामक

नयन सुभङ्ग ग्लपित कुरङ्ग' प्रकाण्डकाम कोदण्डदर्प-
दलन चिल्लीयुगल' कचजितचन्द्रक' हसजितचन्द्रक ॥ देव । १०६॥
भक्तलोचन-चकोर-तोषिका पापताप-निकुरम्बमोषिका ।
अस्तु नः सुखविधावतन्द्रिका गौरचन्द्र ! तव कान्ति-चन्द्रिका ॥१०७॥

चरण चलण, धरणि-पवन
गुणक, कथन, सततकरण ॥ धीर ॥ १०८

अथवा साप्तविभक्तिकी कलिका

(१) यः सुरनिकर प्रार्थित–वितरः
क्षीणितशोक प्रीणितलोकः ।
(२) सुमतिजना यं विदुरतिमायं

केशैः जितानि चन्द्रकाणि मयूरपिच्छानि येन । हसेन मृदुमधुरहास्येन जितः चन्द्रः येन । हे तथाभूत गौर ! जय सर्व्वातिशायी भव ॥१०६॥ कलिकान्ते श्लोकमाह– भक्तेति । हे गौरचन्द्र ! भक्त लोचनानि एव चकोरा स्तेषां तोषिका सन्तोषदायित्री, पापानां तापानाञ्च निकुरम्बस्य समूहस्य मोषिका अपहरणकारिणी तव कान्ति चन्द्रिका अङ्ग-किरणः नः अस्माकम् सुखविधौ सुखदाने अतन्द्रिका अनलसा सदोद्युक्ता अस्तु ॥१०७॥

श्लोकान्ते विरुदं रचयति—चरणेति । चरणयोः चलनेन धरण्याः पवनं पवित्रता-विधानं येन । गुणकानां भक्तानां भगवतो वा गुणवृन्दानां कथनमेव सततं करणं कार्य्यं यस्य ॥१०८॥

अथ मिश्र-कलिकायाः द्वितीयभेदं [साप्तविभक्तिकलिकेति नाम] रचयति—य इति । (१) यः सुरनिकरेभ्यः देवेभ्यः प्रार्थितं वाञ्छितं वितरति ददातीति तादृशः । क्षीणीकृत-शोकश्चासौ प्रीणितो लोको येन सः ॥ (२) यं सुमतिजनाः बुद्धिमन्तः अतिमायं

माणिक्यवत् तुम्हारे नख समूह उज्ज्वल हैं । तुम्हारा वदन, चन्द्रका गर्व चौर है । गरुड़ चञ्चुवत् तुम्हारी नासिका उन्नत है । तुम्हारा अधर बान्धुलि पुष्प को लज्जादायक है । नयन की सुन्दर भङ्गी से हरिण भी ग्लानि प्राप्ति करता है भ्रू युगल कामदेव का प्रकाण्ड धनुक दर्प विनाशन है । केश कलाप, मयूर पिच्छ को पराजित किये हैं एवं मधुर हास्य से चन्द्र ज्योत्स्ना धिक् कृत है ॥१०६॥ हे गौरचन्द्र ! तुम्हारी कान्ति चन्द्रिका लावण्य ज्योत्स्ना—भक्त लोचन रूप चकोर समूह का सन्तोषदायक है, पाप एवं तापादि का समूलतः नाशकारी है । वह हम सब को सुख दान हेतु सर्वदा उद्युक्त हो ॥१०७॥ हे गौर चन्द्र ! तुम्हारे चरण चलिन से अर्थात् गमन से धरणी पवित्र होती है । भगवान् अथवा भक्त वृन्द का गुण कथन ही तुम्हारा नित्य कृत्य है ॥१०८॥

साप्तविभक्तिकी (ख)

जिन्होंने देव गण को प्रार्थित वस्तु प्रदान किया है, एवं लोकों का शोकनाश कर उस को परम प्रीति समर्पण किया है । जिनको सुबुद्धि जनगण, मायातीत, सुकृति गण के धर्म्म सदृश, अथच व्रजपतिनन्दन कहकर जानते हैं । निजगुण कथन शील प्रणयिनी राधा

सुकृतितनुत्रं व्रजपति-पुत्रं ।

(३) निजगुणकथनपरेण प्रणयिजनरतिधरेण
प्रमदितबुधहृदयेन क्षितिसुखमुदरचि येन ।

(४) श्रीवल्लभो देववर्य्याय विप्रोत्तम श्चित्रचर्य्याय
यस्मै ददौ सद्भिरिष्टाय कन्यामलङ्कृत्य शिष्टाय ।

(५) रुचिक्षिप्तचम्पान्महिष्ठानुकम्पात्
कलि-श्रीरकस्मात् क्षयं प्राप यस्मात् ।।

(६) श्रीवासमित्रस्य मिश्रेन्द्रपुत्रस्य
चिद्रूपकायस्य दिव्या गुणा यस्य ।

(७) सति यत्र वरे ऽवतरत्यजरे
भुवनं महिते सुखितं स्वहिते ।

(सम्बोधनं) स त्वं प्रभुवर विश्वं दरहर
लक्षाधिकगुण रक्षातिनिपुण ।। देव ।। १०६

गौरः सच्चरितामृतामृतनिधिः गौरं सदैव स्तुवे
गौरेण प्रथितं रहस्यभजनं गौराय सर्व्वं ददे ।

मायातीतं सुकृतीनां तनुत्रं वर्म्म सर्व्वथा रक्षकेति भाव. । अथच व्रजपतिपुत्रं नन्दनन्दन बुधः जानान्ति ।।३।। येन निजगुणकीर्त्तन-शीलेन, प्रणयि-जनस्य राधाया रतिधरेण भाव भूषितेन तथा प्रमदितानि आनन्दितानि बुधानां प्राज्ञानां हृदयानि येन तादृशेन क्षितिसुखं पृथिव्याः आनन्दः उदरचि निर्मितं । (४) यस्मै देववर्य्याय चित्रचर्य्याय विचित्रलीलामयाय सद्भिः इष्टाय शिष्टाय विप्रोत्तमः श्रीवल्लभः कन्यां लक्ष्मीप्रियां अलङ्कृत्य ददौ । (५) यस्मात् रुच्या कान्त्या क्षिप्तं निन्दितं चम्पं चम्पकं येन तथा महिष्ठा महत्तमा अनुकम्पा दया यस्य तस्मात कलिश्रीः कलिप्रभावः अकस्मात् क्षयं प्राप । (६) यस्य श्रीवासमित्रस्य मिश्रचन्द्रपुत्रस्य चिन्मयरूपशीलस्य दिव्या गुणाः सन्ति । (७) यत्र यस्मिन् वरे अजरे नित्य किशोरे महिते पूज्यतमे स्वेषां भक्तानां हित-साधनाय अवतरति सति भुवनं सुखितं भवति । (सम्बोधनं) स त्वं असि । हे प्रभुवर महाप्रभो ! हे दरहर भयनाशन ! लक्षाधिकाः गुणा यस्य । अतिनिपुण । विश्वं रक्ष ।।१०६।। कलिकान्ते श्लोकमाह—गौर

का भाव भूषित हो, एवं बुधगण का हृदयानन्दन हो, पृथिवी का सुख विधान में तत् पर हो । विप्रवर्य्य श्रीवल्लभाचार्य्य, निज कन्या लक्ष्मी प्रिया को अलङ्कृत कर, साधु वृन्द के अभीष्ट विचित्र लीलापरायण जिन शिष्ट देववर्य्य को सम्प्रदान किये हैं । चम्पक विनिन्दी कान्ति शील जिन महत्तम दयालु प्रभु के प्रभाव से कलि सहसा हत श्री हो गया है । श्रीवास मित्र, मिश्रपुरन्दर पुत्र सच्चिदानन्द तनु प्रभु में दिव्य गुणावलि विद्यमान है । अवतार सार, नित्य किशोर पूज्यतम प्रभु—भक्त वर्ग के हित साधन हेतु अवतार ग्रहण करने से भुवन आनन्दित हुआ । वह हे, महाप्रभो ! हे भयनाशन ! तुम्हारे में लक्षाधिक गुण हैं । हे अतिनिपुण ! विश्व की रक्षा करो ।।१०६।। गौर ! सच्चरित्रामृत

गौरादस्ति कृपालुरत्र न परो गौरस्य भृत्योऽभवं
गौरे गौरवमाचरामि भगवन् गौर प्रभो रक्ष मां ॥११०

कीर्त्तन-कल्पित नर्त्तन-वल्गित
बान्धव राजित' मां कृपयाऽजित ॥ धीर ॥ १११

(२७)

गुणगण-गौरवगेहं गिरिशागम्यो गभीर-गीर्ग्रामः ।
गतिगञ्जितगजराजो गौरो गच्छतु गतिस्त्वं मे ॥११२॥
कलिखलगर्व्वितघाती चतुरच्छलनाजयी झटिति ।
तारयतु दग्धधिषणं नष्टं पापाद्भयेन मां स हरिः ॥११३॥

अथ केवलायां अक्षरमयी

अद्भुत गुणजय आहित कलिभय
इष्टजनावक ईश्वरसेवक ।

इति। स्पष्टार्थमेतत् ।११०॥ श्लोकान्ते विरुदं रचयति— कीर्त्तनेति। कीर्त्तन कल्पितं सृष्टं येन। नृत्यावसरे वल्गितं उल्लम्फनं यस्य। बान्धवैः भक्तैः राजित वेष्टित। हे अजित ! मां कृपय ॥१११॥

(२७)

अथ केवल-महाकलिकारम्भे श्लोकद्वयं रचयति— गुणेति। गुणगणानां गौरवस्य गेहं आश्रयस्थलं, गिरिशस्य शिवस्य अगम्य दुर्ब्बोध्य, गभीरो ग्रीर्ग्रामः वाक्यसमूहो यस्य। गत्या गमनभङ्ग्या गञ्जित स्तिरस्कृतो गजराजो येन। स गौर, मे गतिस्त्वं आश्रयं गच्छतु ॥११२॥ कलिखलस्य कलिदुष्टस्य गर्व्वितं अहङ्कारं हन्तीति तथाभूतः, चतुराणां छलनां जयतीति तादृशश्च स हरिः दग्धा विनष्टा धिषणा बुद्धि र्यस्य तं पापाद् भयेन नष्टश्च मां झटिति द्राक् तारयतु ॥११३॥ श्लोकान्ते अक्षरमयी कलिकां रचयति— अद्भुतेति। हे अद्भुतगुण ! त्वं जय। आहितं संपादितं कलेः भयं येन। इष्टजनानां भक्तानां अवक

समुद्र ! गौर का स्तव मैं सर्वदा ही करता हूँ। गौर कर्त्तृक-गोपी आनुगत्य से रहस्य भजन विस्तारित हुआ है। गौर को ही मैं सर्वस्व दान करूँगा। धरणी गौर व्यतीत अधिकतर कृपालु और कोई नहीं है। मैं गौर का भृत्य बनूँगा, गौर में गौरव भक्ति विधान करूँगा। हे चिर सुन्दर प्रभो ! गौर ! मुझ को सेवा दान कर रक्षा करो ॥११० सङ्कीर्त्तन का सृजन तुमने ही किया है। नृत्यावसरमें तुम उल्लम्फन करते हो,तुम बान्धव पार्षद के सहित सदा वेष्टित रहते हो, हे अजित। मुझे कृपा करो ॥१११॥

केवल कलिका का (२७) अक्षरमयी

गुण गणों का गौरव गृह, शिव का भी दुर्बोध्य, गम्भीर वाक् एवं गमन भङ्गी से गजराज निन्दाकारी गौर मेरी गति हो ॥११२॥ कलिदुष्ट का गर्वनाशन, चतुर, वञ्चना नाश हेतु पटु,वह हरि ही हतबुद्धि एवं पापभयभीत आशु मुझ को परित्राण करें ॥११३॥

हे अद्भुत गुण गौर ! तुम्हारी जय हो, तुमने कलि को भय दान किया है। तुम

उद्धतदण्डन ऊढ़शुमण्डन
ऋजुजन संश्रित ॠषिगणस्तुत
ऌ दिवऋतामित ॡवदसाधित
एजित-दुर्जन ऐश्यनिकेतन
ओड्र सदृगधर औज्ज्वल्याकर
अंशुकभूषण अस्तगदूषण।
कनक समप्रभ खलजन दुर्लभ
गणना विरहित घनकचविलसित
ङुतिजित कोकिल चूड़ित-विचकिल
छलित कमलमद जगती प्रियकपद

पालक। ईश्वरः सेवको यस्य, यद्वा ईश्वरपुरीतो लब्धदीक्ष उद्धतानां दण्डदानकारिन्! ऊढं धृतं सुमण्डनं येन। ऋजुजनैः सरलैः संश्रित आश्रित। 'ॠ' कारो देवमाता ऋषिगणाश्च तैः स्तुत। ऌकार इव ऋतामित, अत्र शब्दश्लेषः। ऋतः सत्यो दीप्तः पूजितो वा अमितश्च। उपमान-पक्षे ऋतं ऋभावं इतः प्राप्तः। दीर्घ ॡकारो यथा साधितो न स्यात्, ऋत्व-प्राप्तेः, किन्तु मातृकान्यासादौ नित्यसिद्धोऽस्त्येव, तथा त्वमपि जन्यो न, किन्तु नित्य-सिद्धः। एजिताः कम्पिता दुर्जना यस्मात्। ऐश्यस्य ऐश्वर्य्यस्य निकेतन आलय। ओड्रस्य जवापुष्पस्य सदृक् तुल्यः अधरः यस्य। औज्ज्वलस्य लावण्यस्य उज्ज्वल रसस्य वा आकर। अंशुकं अतन्गीयमेव भूषणं यस्य भूषणादि-रहितेति भावः। अस्तगं विनष्टं दूषणं निन्दनं यस्मात् अनिन्दकेत्यर्थः। गणना-विरहितः छन्नत्वेनावतार--प्रकरणे न पठित। ङुत्या शब्देन जितः कोकिलो येन। चूड़िताः चूड़ात्वं प्रापिता विचकिला मल्लिका येन। छलितो विडम्बितः कमलस्य मदः उल्लासः येन तथा जगत्याः प्रियक प्रीतिजनकं पदं यस्य। झनीदिति या नूपुरयोः शोभया अतिशब्द तस्याः पदं व्यवसायं

भक्त जन पालक हो, ईश्वर, तुम्हारासेवक है, अथवा ईश्वर पुरी से तुम दीक्षा ग्रहण किये हो, उद्धत जन को दण्ड दान तुम करते हो, उत्तमोत्तम लङ्कार धारण तुम करते हो, सरल लोकगण तुम को अवलम्बन करते हैं। देव माता एवं ऋषि गण तुम्हारा स्तव करते हैं। 'ऌ' कारवत् अर्थात् 'ऌ' कार जिस प्रकार स्थल विशेष में 'ऋ' भाव को प्राप्त करता है, उस प्रकार तुम सत्य, दीप्त, पूजित एवं अमित हो, 'ॡ' कार जिस प्रकार साधित नहीं होता है, कारण, वह 'ऋ' भाव को प्राप्त करता है, किन्तु मातृका न्यासादि में वह वर्ण नित्य सिद्ध है, उस प्रकार तुम—उत्पन्न वस्तु नहीं हो, किन्तु नित्य सिद्ध ही हो। दुष्ट गण, तुम्हारे भय से कम्पित होते हैं। सकल ऐश्वर्य्य का निधान तुम ही हो, जवा कुसुम के सदृश तुम्हारा अधर है! लावण्य एवं उज्ज्वल रस का आकर तुम हो, अंशुक पट्टवस्त्र ही तुम्हारा भूषण है, अर्थात् अपर कोई भूषण नहीं है। तुम अ निन्दक हो, कनक के समान कान्ति तुम्हारी है। खलजनों के पक्ष में तुम सुदुर्लभ हो, 'प्रच्छन्न' होने के कारण तुम को श्रीमद् भागवत के अवतार प्रकरण में नहीं कहा गया है। तुम्हारे घन केश कलाप अतिसुन्दर है। तुम्हारे शब्द से कोकिल लज्जित होता है। मल्लिका

झनदिति नूपुर	ञोङ्यापदकर
टीकन निस्तल	ठजयि नखाञ्चल
डमरुधृगीश्वर	ढुण्डचकृपाभर
णात्मक विग्रह	तत्त्वविदाग्रह
थुत्कृतमुक्तिक	दरपदभक्तिक'
धर्म्महृदादर	नर्म्मरसाकर
पद्मविजयिकर	फुल्लकमलधर
बन्धविमोचन	भास्कररोचन
मधुरतरानन	यमजयिसेवन
रसभरदायक	ललितविधायक
बलदनुपमदय	शमितभुवनभय

नर्त्तनमिति यावत् करोतीति तथाभूत। टीकनं हरिनामार्थ विवरणमेव निस्तलं स्वभावो यस्य। ठं चन्द्रबिम्बं जयतीति तादृक् नखाञ्चलो यस्य। टमरुधृक् शिवः तस्य ईश्वर सर्व्वाभीष्टदायक। ढुण्ड्यः अन्वेषणीयः कृपाभरो यस्य, णात्मकः सुखमयः ज्ञान स्वरूपो वा विग्रहो यस्य। तत्त्वविदां तत्त्ववादिनां आग्रहो यस्मिन्, यद्वा तत्त्ववादिनि आग्रहो यस्य। थुत्कृता मुक्ति र्यया तादृशी दरापि ईषदपि पदभक्ति र्यस्य। धर्म्महृतां धर्म्मद्वेषिणां आ सम्यक् दरं साध्वसं यस्मात्। नर्म्मरसस्य परिहासरसस्य आकर खनि। पद्मं विजयते इति तादृक् यः करः हस्तः तस्मिन् फुल्लं प्रस्फुटित कमलं रेखारूपेण लीलया वा धरतीति तादृश। बन्धननाशक। भास्करस्य सूर्य्यस्य रोचनं दीप्ति र्यस्यात्, यद्वा भास्कर इव लोचनं यस्य महादीप्तनयनेत्यर्थः। यमं जेतुं शीलं यस्य तादृक् सेवनं यस्य। रसभरं रसातिशय्यं शृङ्गारं वा ददातीति। ललितं ईप्सितं विदधातीति। बलन्ती वृद्धिं गच्छन्ती अनुपमा

कुसुम शोभित तुम हो। कमलका अहङ्कार तुम्हारे निकट विड़म्बित हुआ है। तुम्हारे चरण युगल जगत् के प्रीतिप्रद हैं। झन् झन् शब्द से नूपुर बजाकर तुम नाचते रहते हो, हरिनामार्थ विवरण ही तुम्हारा स्वभाव है। तुम्हारे नख प्रान्त भी चन्द्र बिम्ब को पराजित करता है, डमरुवादक शिव को अथवा भक्त शङ्कर को सर्वाभीष्ट प्रद तुम हो तुम्हारी अत्यधिक कृपा अन्वेषणीय ही है। सुखमय अथवा ज्ञान स्वरूप ही तुम्हारा विग्रह है। तत्त्ववादि गण के प्रति तुम्हारा विशेष आग्रह है, अथवा तत्त्ववादि गण तुम्हारे प्रति आसक्त चित्त हैं। तुम्हारे चरणों में विन्दुमात्र भक्ति होने से मुक्ति धृक्कृत होती है, धर्मद्वेषी गण तुम को देखकर भीत होते हैं। नर्म रसका आकर तुम हो, पद्म विजयी कर के द्वारा तुम लीला पद्म धारण किये हो, सर्व बन्धन नाशन तुम ही हो, तुम से सूर्य्य प्रदीप्त होते हैं। अथवा सूर्य्य के समान तुम्हारे नयन सदा दीप्त हैं। तुम्हारा वदन किन्तु मधुरतर है। तुम्हारी सेवा करने से यमराज पराजित होते हैं। रसातिशय्य अथवा शृङ्गार रस प्रदान तुम करते हो, ईप्सित वस्तु दान तुम करते हो। तुम्हारी दया उत्तरोत्तर वृद्धि शील है। सर्व भुवन का भयनाश तुम करते हो, तुमने षड़्भुज मूर्त्ति का

षड् भुजवीक्षक सन्मतशिक्षक
हरिगुणकथन क्षणनन्दितजन ॥ देव ॥ ११४

गौराङ्गोऽगणितं गतो गुणगणं गीर्व्वाणगोत्रो गवां
ग्लानिं गाढ़तमां गिलन् गृहरुचि र्गान्धार-गीते गुरुः ।
गञ्जन् गोत्रसमं गजं गतिरुचा गाम्भीर्य्यतो गोनिधिं
गाङ्गेयं गुरु गौरवेण गदतो गीः पद्धतिं गाहतां ॥११५॥

श्रीराजितर हीराञ्चितकर
धीरावृत' वर गीराद्रितनर ॥ धीर ॥ ११६

(२८)

निजजन हृद्भ्रमर-ततिश्रित मरुणच्छवि सुरभि ।

दया यस्य । शमितं नाशितं भुवनस्य भय येन । सतां भक्तानां मतं आचारादिकं निष्ठा-भक्त्यादिकञ्च शिक्षयतीति । हरिगुणकथनैः एव क्षणैः उत्सवैः नन्दिता जना येन ॥११४

कलिकान्ते श्लोकमाह—गौराङ्ग इति । गौराङ्गः गदतो विरुदावलीं वर्णयतो मम गीः-पद्धतिं शब्दपथं गाहतां गोचरीभूयता-मित्यन्वयः । कथम्भूतोऽसौ—अगणितं संख्या-शून्यं गुणगणं गतः । गीर्व्वाणानां देवानां च गवः स्वर्गस्य च त्राणकारी । गवां चतुर्द्दश-भुवनानां गाढ़तमां ग्लानिं गिलन् नाशयन् । गृहाः प्रणयिनी राधा तस्या इव रुचिः कान्ति र्यस्य । गृहरुचिरितिपाठे गृहाभिलाष-पूरकेत्यर्थः । गान्धार-गीतस्य आचार्य्यः । गतिरुचा गमनशोभया गोत्रसमं पर्व्वताकारं गजमपि गाम्भीर्य्यतः गोनिधिं समुद्रं तथा गुरुगौरवेण च गाङ्गेयं भीष्मं गञ्जन् धिक्कुर्व्वन् मम वाक्यगोचरं भवतु ॥११५॥ श्लोकान्ते विरुदं रचयति—श्रीति । श्रिया सौन्दर्य्येण राजिततर । हीरकैः अञ्चितः भूषितः करो यस्य । धीरैः भक्तैः आवृत । वेष्टित । हे वर महाप्रभो ! यद्वा वरया श्रेष्ठया गिरा वाक्येन आर्द्रिता नरा येन ॥११६॥

(१८)

अथ सर्व्वलघु-कलिकारम्भे श्लोकमाह—निजेति । ननु भो गौर ! मम हृदि सरसि

प्रदर्शन किया है । भक्तगण की निष्ठा भक्त्यादि आचार शिक्षा प्रदान तुम करते हो, हरि गुण गाथा रूप उत्सव सम्पादन द्वारा सब को सुखी करते हो ॥११४॥

जो अगणित गुण गण मण्डित, देवगण एवं स्वर्ग त्राण कारी, चतुर्दश भुवन की ग्लानि विनाशक, प्रणयिणी श्रीराधा की कान्ति धारी, गान्धार गीता चार्य्य, एवं गमन शोभा से पर्वताकार हस्ति को, गाम्भीर्य्य द्वारा समुद्र को, गुरु गोरव से भीष्म को धिक्कार प्रदान करते हैं । वह गौराङ्ग ही विरुदावली वर्णना कारी मदीय वाक्य पथका गोचरीभूत होवे । यही प्रार्थना ॥११५॥ समधिक सौन्दर्य्य में विराजमान तुम हो, तुम्हारे हस्त में हीरक खचित अलङ्कार अङ्गुरीयकादि वर्त्तमान हैं । । धीर भक्त गण तुम को वेष्टन कर विद्यमान हैं । हे महाप्रभो ! तुम्हारे सुमधुर वाक्य से सकल लोक ही सन्तुष्ट होते हैं ॥११६॥

सर्व्वलघु (२८)

ननु भवतः पदकमलं हृदि सरसि स्फुरतु मम ।।सर्व्वलघ्वी।।११७

कलिबल हुतवह्-हत-मनुजगहन
दवहर सुखकर सुनिविड़ नवघन'
कनकसदृश रुचिकृतजन सुखभर
चरणकमल हृत धरणि-दवथुदर ।
शशधर-समसिततनुतर-वसनक ।
शिखरमणिविजयि-सुमधुर-दशनक ।
करिकर-रिपुभुजयुग' नवकिशलय
समकर रुचिविलसित कनकवलय ।
वदनकमल-गतनयनमदिरवर'
गलधृत कनकखचित मणिसर'
शरणसमुपगतजन-सकरुणतर
मयि सकरुणदृश मनवधि सुवितर ।। देव ।।११८

सरोवरे भवतः पदकमलं स्फुरतु । किम्भूतं तत्—निजजना भक्ता स्तेषां हृत् मानसमेव भ्रमर-वृन्दं तेन श्रितं आश्रितं, अरुणवर्णं तथा सुगन्धि च ।।११७।। श्लोकान्ते कलिकां रचयति—कलीति । कलिबलं कामक्रोधादिकमेव हुतवहः अग्निः तेन हता उपतप्ता मनुजा मनुष्या एव गहनं वनं तस्य दवं अग्नि हरतीति तादृक् च सुखकरश्च सुनिविड़श्च नवो घनः मेघ इव तत्स्वरूपेत्यर्थः । कनकस्य सुवर्णस्य सदृशी या रुचिः कान्ति स्तया कृतः जनानां सुखभरो येन । चरण-कमलाभ्यां हृतं धरण्याः दवथु च दरं भयञ्च येन । शशधरस्य चन्द्रस्य समं सितं शुभ्रं तनुतरं सूक्ष्मतरञ्च वसनं यस्य । शिखरमणिं विजयते इति तादृशाः सुमधुराः दशना यस्य । किरणः करस्य रिपु शत्रु भुजयुगं यस्य । नवानां किशलयानां पल्लवानां समा करयोः रुच्या शोभया विलसितं कनकवलयञ्च यस्य । वदन कमले गतः नयन-मदिरः लोचन-खञ्जनः' यस्य । वरगले धृतः कनकखचितः मणिसरः मुक्ताहारो येन । तव शरणे समुपागता ये जनाः शरणागता इत्यर्थः तेषु सातिशय करुणाकर । हे देव ! मयि सकरुणा या दृक् दर्शनं तां अनवधि सततं सुष्ठु वितर देहि

हे गौर ! तुम्हारे भक्त गण के हृदयरूप भ्रमर वृन्द द्वारा आश्रित अरुण वर्ण एवं सुगन्धि चरण कमल मदीय हृदय सरोवर में स्फुरित हो ।।११७।। काम क्रोधादि कलि सेनारूप अग्नि द्वारा उत्तप्त मनुष्य गण रूप वनाग्नि निर्वापक सुख कर एवं सुनिविड़ नवघन सदृश तुम हो । तुम्हारी स्वर्ण सदृश अङ्गकान्ति सकल लोकों को सुखी करती है । चरण कमल द्वारा धरणी का ताप एवं भय विदूरी कृत हुआ है । चन्द्र के समान शुभ्र एवं सूक्ष्मतर वस्त्र परिधान तुमने किया है । (शिखर) नामक माणिक्य विजयी तुम्हारी सुमधुर दन्त राजि है । करिकर विनिन्दी तुम्हारे भुजयुगल हैं । नव किशलय सदृश तुम्हारे कर में परम सुन्दर स्वर्ण बलय विद्यमान है । तुम्हारे वदन कमल में नयन-खञ्जन सञ्चरण कर रहा है । उत्तम गलदेश में स्वर्ण खचित मुक्ताहार भी

प्लुष्टाष्टापद-जिट्विट् स्फुटनटन श्रीः प्रकाण्डदोर्दण्डः ।
खण्डित यमदण्डदरो गौरो हृन्मण्डपं प्रमण्डयतु ॥११९

विमलकमलचरणयुगल ।
शमित सकल जगद विरल॥ धीर॥१२०

विपुलभयदरूपे संसृतिध्वान्तकूपे
पतितमधिककष्टं कालसर्पेण दष्टं ।
स्वचरणरसलेशं पाययित्वा सुपेशं
जनमिममतितान्तं जीवयाराद् गतान्तं ॥१२१
येयं ते विरुदावली कलिखलीकारस्य हेतु र्बली
त्वल्लीलागुणमाधुरी-रणकरी संसारभीजित्वरी ।

॥११८॥ कलिकान्ते श्लोकमाह— प्लुष्टेति । गौरः हृदेव मण्डपं गृहं प्रकृष्टरूपेण मण्डयतु भूषयतु । कीदृगसौ— प्लष्टं दग्धं यत् अष्टापदं सुवर्णं तस्य जयशीला त्विट् कान्ति र्यस्य । स्फुटा परिव्यक्ता नटनस्य श्रीः सौन्दर्य्यं येन । प्रकाण्डं प्रशस्तः दोर्दण्डः बाहुदण्डः यस्य । खण्डितः नाशितः यमदण्डस्य यमशासनस्य दरः भयं येन ॥११९॥ श्लोकान्ते विरुदमाह-- विमलेति । कमलं कमलं इव चरणयो र्युगलं यस्य । शमितं शान्तं सकलं जगत् येन । अतो अविरल निरवकाश इत्यर्थः ॥१२०॥

अथ निखिल-कला-समाप्तौ श्लोकद्वयं रचयति—विपुलेति । विपुल-भयदरूपे महाभीति-प्रद--स्वरूपविशिष्टे संसृतिः संसरणमेव ध्वान्तं अन्धकारमयं कूपं तस्मिन् पतितं कलिकाल रूपेण सर्पेण अधिकं कष्टं यथा स्यात्तथा दष्टं अतितान्तं अतिपरिश्रान्तं इमं जनं स्व चरणस्य रसलेशं सुपेशं साधु यथा स्यात्तथा पाययित्वा आराद् समीपमेव गतान्तं गत-नाशं नष्टप्रायमित्यर्थः जीवय ॥१२१॥ भो श्रीगौराङ्ग महाप्रभो ! या इयं ते विरुदावली कलेः निर्भर्त्सनस्य पराभवस्य बलवान् हेतु स्तत्साधिका—तव लीलानां च गुणानाञ्च रणकरी वर्णनामयी तथा संसारस्य भयनाशिनी च आस्ते— यः खलु एनां विरुदावलीं गिरां वाक्यानां वेदिता उच्चारण-निपुणः सन् भाषिता वर्णयिष्यति, तथा अस्यां भक्ति प्रथयिता

दोद्युल्यमान है। शरणागत जनगण के प्रति अतिशय करुणा विस्तार करते हो, देव ! हे देव ! मेरे प्रति सतत सकरुण दृष्टि पात ही करो ॥११८॥ दाहोत्तीर्ण स्वर्ण विजयि कान्तिधर, नृत्य काल में अतिशय सौन्दर्य्य का परिवेषक, प्रकाण्ड बाहुदण्ड विशिष्ट एवं यमदण्ड का भयहर वह गौर ही मेरा हृदय मण्डप को प्रकृष्ट रूपेण भूषित करें ॥११९॥

हे गौर ! तुम्हारे चरण युगल विमल कमल के समान सुन्दर सुस्निग्ध एवं सुगन्धमय हैं। तुम समग्र जगत् को शान्त किये हो। सुतरां तुम्हारा अवकाश और नहीं है ॥१२०॥

हे गौर ! महाभयङ्कर संसार रूप अन्धकूप में पतित, कलिकाल रूप सर्प कर्त्तृक महा कष्ट प्रदान पूर्वक दष्ट, एवं अति परिश्रान्त एवं आशु नष्ट प्राय मादृश जन को तुम्हारे चरण कमल की सुधाविन्दु पान उत्तम रूप से कराकर जीवित करो ॥१२१॥ हे श्रीगौराङ्ग महाप्रभो ! कलि पराभव विषय में महासाधिका, तुमारें लीला गुण माधुरी

एनां यः खलु भाषिता प्रथयिता भक्ति गिरां वेदिता
श्रीगौराङ्ग महाप्रभो भव शुभोल्लासाय तस्याशु भोः ।।१२२
गोविन्दस्य प्रकाशोऽभूद् यथा श्रीगौरसुन्दरः ।
गोविन्दविरुदावल्या स्तथेयं विरुदावली ।।१२३।।
येषां निदेशवशतो विरुदावलीयं गौरप्रभो विरचिता रघुनन्दनेन ।
गोवर्द्धन-क्षितिभृदन्तिकवासिन स्ते गृह्नन्त्विमां कृतकृपाः कृपणे महान्तः ।।१२४

***

इति श्रीकलियुगपावनावतारभगवन्नित्यानन्दकुलजलधिकलानिधि-श्रीलकिशोरी-मोहनगोस्वामिसुनु-श्रीरघुनन्दनगोस्वामि कृता

श्रीश्रीगौराङ्गविरुदावली समाप्ता ।

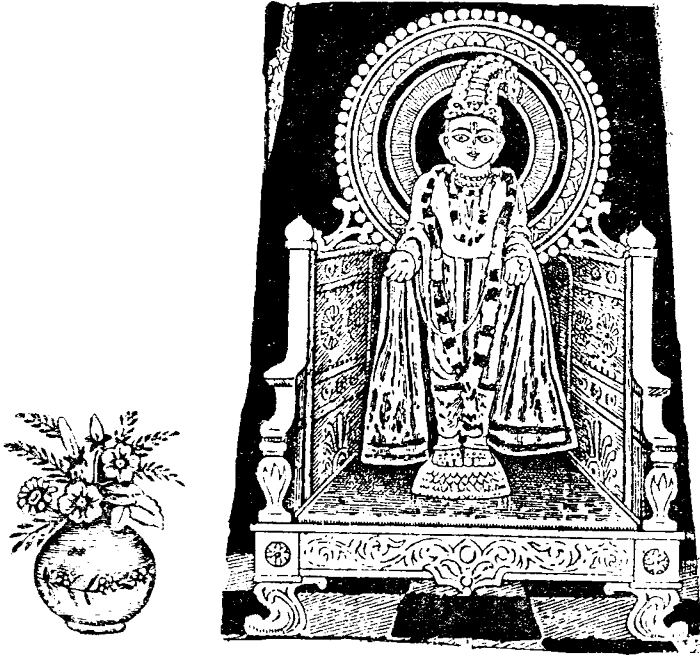
विस्तारयिता च भवति—आशु शीघ्रमेव तस्य शुभोल्लासाय प्रेम-भक्ति-प्रदानपूर्वका-नन्दातिरेका समर्पणाय भवेत्यहं प्रार्थये भवत्-चरणसरोजेषु । गिरां । वेदितेति 'व्युत्पन्नः सुस्थिरमति र्गतग्लानि र्गलस्वनः । भक्तः कृष्णे सवेद् यस्तु स विरुदावली-पाटकः ।।" इति श्रीरूपगोस्वामिपादानां लक्षणमनुसृत्यैव लिखितं, तेन चास्य ग्रन्थस्य पठनाधिकारी निरूपित इति दिक् ।।१२२।। श्रीगौरसुन्दरः यथा श्रीगोविन्दस्य प्रकाशः अभूत्, तथा इय विरुदावली अपि गोविन्द-विरुदावल्याः एव प्रकाशः, अभिन्नकलाभिरेव रचितत्वात् । गोविन्दस्य प्रकाश-विशेष एवायं गौर इति श्रीजीवगोस्वामिभिरुक्तत्वात् । "प्रकाशस्तु न भेदेषु गण्यते, स हि न पृथगि" त्युक्तत्वाद् गौर गोविन्दयो स्तत्त्वतः पार्थक्यं नास्तितरां । लीलामाधुर्य्यादौ यद् यच्च वैलक्षण्यं दृश्यते, तत्तत्तुश्रीलकविकर्णपूरप्रबोधानन्दादीनां ग्रन्थेष्वनुसन्धेयं ।।१२३।। येषां निदेशवशतः आज्ञया इयं गौराङ्गविरुदावली रघुनन्दनेन विरचिता, गोवर्द्धनगिरिराजस्य निकटवर्त्तिनः महान्तः ते कृतकृपाः कृपान्विताः सन्तः इमां गृह्णन्तु इति प्रार्थये ।।१२४।।

नेत्ररसमिते शाके गजचन्द्र-समन्विते ।
नवद्वीपे निवसता केनापीयं विरचिता ।।*।।

इति श्रीगौरकृपा-सारणीनाम टिप्पणी समाप्ता ।

प्रभृति की वर्णनामयी—संसार भय नाशिनी इस विरुदावली का पाठ उच्चारण निपुण होकर जो मानव करेंगे, अथवा भक्ति विस्तार करेंगे, अर्थात् भक्त समाज को श्रवण करायेंगे । उनके प्रति तुम शीघ्र शुभ उल्लास प्रदान करोगे । अर्थात् प्रेम भक्ति प्रदान पूर्वक आनन्दाति शय्य का विस्तार करोगे ।।१२२।।श्रीगौर सुन्दर जिस प्रकार श्रीगोविन्द का ही प्रकाश विशेष हैं । उस प्रकार यह गौराङ्ग विरुदावली भी गोविन्द विरुदावली का ही प्रकाश विशेष है ।।१२३।।

जिन के आदेश क्रम से श्रीगौराङ्ग महाप्रभु की यह विरुदावली रघुनन्दन कर्त्तृक विरचित हुई है, वे सब गिरि गोवर्द्धन तटवर्त्ती महोदय वृन्द इस दीन हीन के प्रति कृपा कर इसका ग्रहण करें—यही प्रार्थना ।।१२४।।



केनापि मुग्धबालेन हरिदासाख्यशास्त्रिणा
रचिता विमला व्याख्या सज्जनानन्द वर्द्धिनी ।
रसाकाशग्रहेचन्द्रे वैशाखस्य कुहूदिने ।
श्रीगदाधर प्रसादेन ग्रन्थोऽयं पूर्णतां गतः ।।

श्रीमद् गुरवे समर्पणमस्तु ।







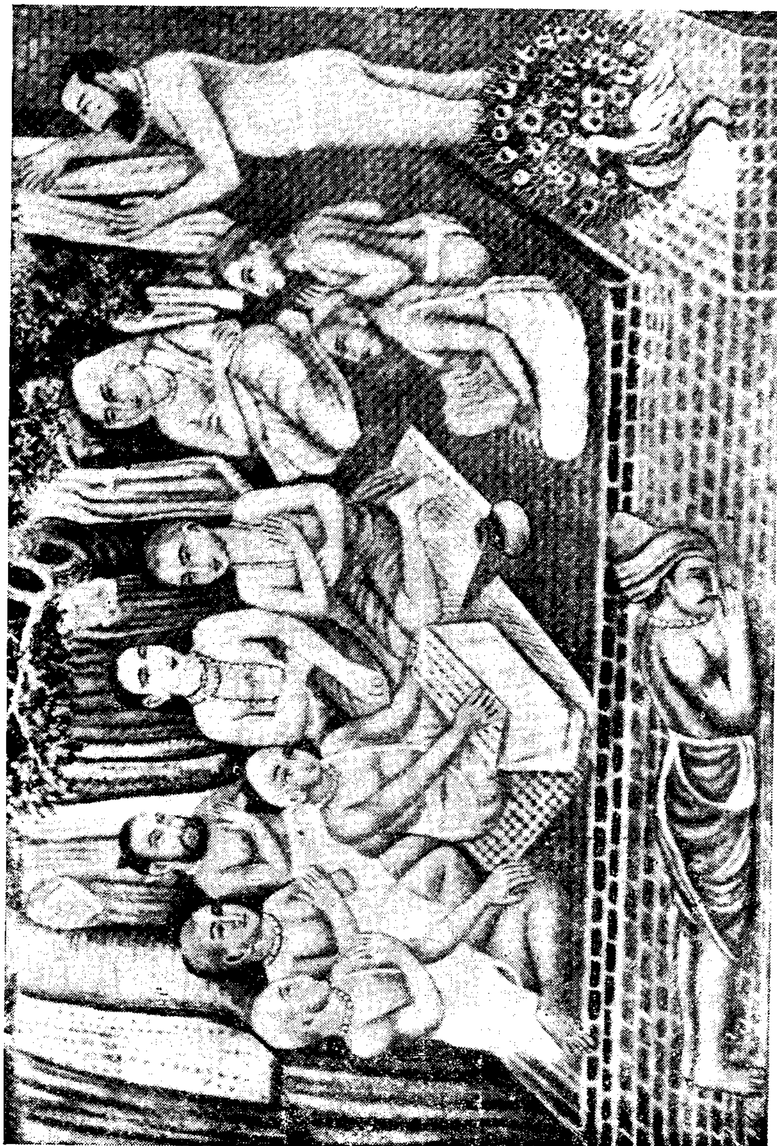
श्रीमदुत्तरभागवते

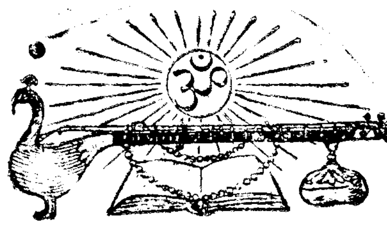
श्रीचैतन्य-कवचम्

***

शिरो मे पातु चैतन्यो भालं विश्वम्भरः प्रभुः ।
नयने श्रीगौरचन्द्रः श्रवणे द्विज-नन्दनः ॥
गण्डौ शचीसुतो नासां जगन्नाथात्मजोऽवतु ।
रसनां कृष्णचैतन्य स्तालु कृष्णोऽधरं मुहुः ॥
ओष्ठं विष्णुप्रियानाथो दन्त-पंक्ति द्विजोत्तमः ।
वाचं संकीर्तनानन्दः स्वरूपानन्दविग्रहः ॥
चिबुकं धरणीदेवो विश्वरूपानुजो मुखं ।
लक्ष्मीनाथः कण्ठदेशं ग्रीवां भक्तजन-प्रियः ॥
स्कन्धयुग्मं द्विज-प्राणो मनः पातु शचीसुतः ।
नामसूत्रधरः कुक्षि हृदयं नामतत्परः ॥
कुमति–ध्वंसनो नाभि कटिदेशं करङ्गधृक् ।
ध्वजः दण्डधरः पातु ऊरु न्यासि-शिरोमणिः ॥
जानू काषायवसनो जङ्घे पातु द्विजोत्तमः ।
गुल्फ-गुग्मं द्विजः पातु पादौ भक्तजन-प्रियः ॥
गदाधरप्रियप्राणो देहं पातु च सर्व्वदा ।
शयने मां सदा पातु नित्यानन्दैक–बान्धवः ॥
भोजने पातु मां नित्यमद्वैतैककृतात्मभुक् ।
पातु मां गमने श्रीच्छाया-गमन-तत्परः ॥
श्रीमद् वीरासनासीनो मामासीनं सदावतु ।
श्रीमद् भागवताध्यायी कथने पातु मां सदा ॥
भगवत् पाद-सेवायां पातु मां भक्तरूप-धृक् ।
गुरु-पादार्चने शिक्षा-गुरु मां पातु नित्यशः ॥
सर्व्वेश्वरो गौरहरिः सर्वतः पातु मां सदा ।
जले स्थले चान्तरीक्षे पर्वतारोहणे तथा ।
दुर्ग-वर्त्मनि वृक्षे च पातु मां भक्तवत्सलः ॥

इति श्रीचैतन्य कवचं समाप्तं ॥
श्रीकृष्णचैतन्याय नमः ॥





श्रीहरिदासशास्त्री सम्पादिता ग्रन्थावली

१। वेदान्तदर्शनम् "भागवतभाष्योपेतम्"
२। श्रीनृसिंह चतुर्दशी, ३। श्रीसाधनामृतचन्द्रिका
४। श्रीगौरगोविन्दार्चन पद्धति
५। श्रीराधाकृष्णार्चन द्वीपिका
६-७-८। श्रीगोविन्दलीलामृतम्
९। ऐश्वर्यकादम्बिनी, १०। संकल्पकल्पद्रुम
११। चतुःश्लोकी भाष्यम् १२। श्रीकृष्णभजनामृत
१३। श्रीप्रेमसम्पुट, १४। भगवद्भक्तिसार समुच्चय
१५। व्रजरीतिचिन्तामणि,
१६। श्रीगोविन्दवृन्दावनम्
१७-१८। श्रीराधारससुधानिधि (मूल, सानुवाद)
१९। श्रीकृष्णभक्तिरत्नप्रकाश,
२०। हरिभक्तिसारसंग्रह
२१। श्रुतिस्तुति व्याख्या, २२। श्रीहरेकृष्णमहामन्त्र
२३। धर्मसंग्रह, २४। श्रीचैतन्य सूक्तिसुधाकर
२५। सनत्कुमार संहिता, २६। श्रीनामामृतसमुद्र
२७। रासप्रबन्ध, २८। दिनचन्द्रिका
२९। श्रीसाधनदीपिका, ३०। चैतन्यचन्द्रामृतम्
३१। स्वकीयात्वनिरास परकीयात्वप्रतिपादन,
३२। श्रीगौराङ्गचन्द्रोदयः, ३३। श्रीब्रह्मसंहिता
३४। प्रमेयरत्नावली, ३५। नवरत्न
३६। भक्तिचन्द्रिका, ३७। वेदान्तस्यमन्तक
३८। श्रीभक्तिरसामृतशेषः, ३९। दशश्लोकी भाष्यम्
४०। गायत्री व्याख्याविवृतिः, ४१। श्रीचैतन्यभागवत
४२। श्रीचैतन्य मङ्गल
४३। श्रीचैतन्यचरितामृतमहाकाव्यम्
४४। तत्त्वसन्दर्भः, ४५। भगवत्सन्दर्भः
४६। परमात्मसन्दर्भः, ४७। कृष्णसन्दर्भः
४८। श्रीगौराङ्गविरुदावली। ४९। सत्सङ्गमः।
५०। श्रीचैतन्यचरितामृतम्।
५१। नित्यकृत्यप्रकरणम्

वङ्गाक्षरे मुद्रित

५२। श्रीबलभद्र-सहस्रनामस्तोत्रम् ५३। दुर्लभसार
५४। साधकोल्लासः ५५। भक्तिचन्द्रिका
५६-५७। श्रीराधारससुधानिधि (मूल, सानुवाद)
५८। भगवद्भक्तिसार समुच्चय ५९। भक्तिसर्वस्व
६०। मनःशिक्षा ६१। पदावली
६२। श्रीसाधनामृतचन्द्रिका

प्रकाशनरत ग्रन्थरत्न—

१। श्रीहरिभक्तिविलासः।
२। श्रीहरिनामामृत-व्याकरणम्, ३। भक्तिसन्दर्भः,
४। प्रीतिसन्दर्भः ५। श्रीचैतन्यचरितामृत
(श्रील कृष्णदास कविराज गोस्वामी कृत)
६। अलङ्कार-कौस्तुभ (प्रभृति)

